महामंत्र



बुद्धिप्रकाशदेव

गायत्री

रणधीर प्रकाशन

सम्पूर्ण वेदों का

महामन्त्र गायत्री

गायत्री वेद की जननी स्वरूपा तथा पातक हारिणी है। इससे अधिक पवित्र वस्तु संसार और दिव्य लोक में भी नहीं है। जैसे पुष्पों की सुगन्ध का सार मधु, समस्त रसों का सार दूध, दूध का सार घृत है उसी प्रकार वेदों का सार "**गायत्री**" है। गायत्री के प्रत्येक पद तथा अक्षरों का महत्व गायत्री पुरश्चरण तथा गायत्री महिमा इस पुस्तक में वर्णित है।



ॐ भूर्भुव स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोयदयात ॥

OM

Om Bhoorbhuvah Sawah
Tatsvituruorenyam
Bhargodevasaya dhimhi
Dhiyo yo nah prachodayat.

॥ ॐ ॥

सम्पूर्ण वेदों का

महामंत्र गायत्री

॥ गायत्री गीता ॥

(जिसका गान करने से त्राण होता है वह गायत्री गीता है)

वेद गुरु ऋषि कृत कहूँ, मेरी कही कछु नाय।
सिद्धनाथ सतगुरु कृपा, सहज ज्ञान फल पाय॥

साक्षी दृष्टा
तत्वदर्शी सनातनी श्री सिद्धनाथ (तीर्थ)
(बुद्धि प्रकाश देवउपाध्याय)

मूल्य : १५.००

रणधीर प्रकाशन हरिद्वार

प्रकाशक–
रणधीर प्रकाशन
रेलवे रोड, आरती होटल के पीछे
हरिद्वार (उ. प्र.)
फोन (0133) 426297, 426195 (निवास)

वितरक–
रणधीर बुक सेल्स
रेलवे रोड, हरिद्वार

प्रमुख विक्रेता –
1. पुस्तक संसार, बड़ा बाजार, हरिद्वार
2. पुस्तक संसार 167, नुमाइश मैदान, जम्मू तवी

संस्करण. – प्रथम 1994

मूल्यः पन्द्रह रुपये

मुद्रक : राजा आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-91

MAHAMANTYRA GAYTRI Rs. 15/-

By: Buddhi Prakash Dev Upadhayay
Published By: RANDHIR PRAKASHAN,
HARDWAR (INDIA)

॥ उपोद्घात ॥

अथ गायत्री आत्मा, ब्रह्मरूप मकरंद।
सिद्धनाथ पद मातरा, सोऽहम् परमानन्द॥

श्री मद्भगवद्पाद परम पूज्य करुणाकन्द श्रद्धेय स्वामी जी श्री शंकरानन्द जी विरक्त की प्रेरणा से जीव प्रक्षालन हेतु वेदान्त परक अभेद बोध गायत्री गीता ज्ञेय आत्मरूपा शंकरशिरा धारावती धर हृदय पावन करी लक्ष्यकरी तद् पद स्वरूप मात्रा पद् अभेद् सोऽहम् गायन्ते गीता गायत्री तिरणतारणी ताप हारणी ज्ञान स्वरूपा अयं आत्मा ब्रह्म **प्रज्ञानं ब्रह्म**—अहं ब्रह्मास्मि।

यह जीव ब्रह्म अभेद गायत्री निबन्ध **'गंगा का हार दिया गंगा के नाथ को'**—अथ बहिरंग गमन करने हारी वृत्ति को अन्तर मुखा गायन्ते गायत्री मम आत्मरूपा शिव शंकर स्वरूप शंकराचार्य शिवोऽहम विलियते समर्पण।

श्री निरंजन शंकर शरणं मम्।

साक्षी दृष्टा
सनातनी श्री सिद्धनाथ तीर्थ
(बुद्धि प्रकाश देव उपाध्याय)

हे ब्राह्मण! अजात अद्वैत अच्छेद अभेद अखण्ड परिपूर्ण परब्रह्म परमात्मा इस विराट में निहित है और यह विराट वेदों में निहित है–वेद गायत्री में निहित है–गायत्री प्रणव में निहित है–प्रणव प्राण में निहित है–प्राण आत्मा में निहित है और आत्मा हृदय में निहित है–वह तेरा तू ही है–आत्मा तेरा स्वरूप है–तू आत्मा है। स आत्मा तत्वमसि! यह आत्मा ब्रह्म है, वह तू ही है। इसलिए हे ब्राह्मण! तू इस वेद माता गायत्री–प्रणवरूपा प्राण के माध्यम से अपने स्वरूप में स्थित हो जा–तेरा स्वरूप ही पर ब्रह्म है–भूमा–अपरोक्ष है, अजात है। तत्वमसि!

साक्षी दृष्टा

सनातनी श्री सिद्धनाथ तीर्थ

(बुद्धि प्रकाश देव उपाध्याय)

महामंत्र-गायत्री

(मङ्गल)

श्री शंकर शिव शंकरो, तव पद पंकज टेक।
सिद्धनाथ सोऽहम् हृदय, दो वैराग्य विवेक॥
श्री निरंजन शंकरा, धर्मवीर अवतार।
विद्या वारिधि सतगुरु, ब्रह्मनिष्ठ साकार॥

महामंत्र

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात॥

यह गायत्री सम्पूर्ण वेदों की जननी है–जो गायत्री का अभिप्राय है वही सम्पूर्ण वेदों का अर्थ है।

या साङ्गोपाङ्ग वेदेषु चतुर्ष्वेकैव गीयते।
अद्वैता ब्रह्मणः शक्ति सा मां पातु सरस्वती॥
आकृतिं या निराकृत्य सच्चिदानन्द शब्द भाक्।
गायत्रीतोऽधिगन्तव्या सा परा समुपास्यते॥

चारों वेदों का सांगोपांग ज्ञान अद्वैत ब्रह्म जिसकी शक्ति मां स्वरूपा सरस्वती सच्चिदानन्द रूप ॐ कार मयी निर्गुण निराकार, सगुण निराकार और सगुण साकार स्वरूपा ज्ञानत्रयी–गायत्री–वाक् ही ऋक है,

प्राण साम है और ॐ उद्गीथ उपास्य उपासना और अनुष्ठान है जिससे परा की प्राप्ति है।

ज्ञान और ध्यान से देखा जाय तो इस संसार में जीव प्राणी मात्र का लक्ष्य सुखरूप कल्याण की प्राप्ति और दु:ख की निवृत्ति में ही रहता है।

प्राणी मात्र की समस्त चेष्टाएँ और विवेक सम्पन्न मनुष्य का समस्त प्रयत्न इसी शाश्वत सुख की ओर मुख करके गतिशील है। भूत-प्रेत गन्धर्व यक्ष किन्नर और इन्द्रादि देवताओं की भी प्रवृत्ति का लक्ष्य इसी शाश्वत सुख की प्राप्ति और दु:ख की निवृत्ति की ओर गतिशील है अर्थात् जीव मात्र का यही एक मात्र लक्ष्य है। यद्यपि थोड़ा बहुत सुख सभी को प्राप्त है परन्तु उससे पूर्ण संतोष प्राप्त नहीं होता इसलिए यह जीव नित्य शाश्वत सुख की प्राप्ति और दु:ख के आत्यान्तिक नाश की इच्छा से कर्म करता रहता है। एक कर्म से शान्ति न पाकर फिर दूसरा व तीसरा कर्म करता रहता है फिर भी कर्म से शाश्वत शन्ति न पाने के कारण उपासना में प्रवृत्त होता है और उपासना से ज्ञान को प्राप्त कर शाश्वत परमानन्द की प्राप्ति करता है। इससे सिद्ध होता है कि नित्य सुख की प्राप्ति और सर्व प्रकार के दु:खों की मूल ही सम्पूर्ण जीवों का इष्ट है और यही पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ हेतु ही

ईश्वर ने करुणावश जीवों के कल्याण हित वेदों का उपदेश दिया। यद्यपि वेदों में अनेकों कर्म और उपासनाओं का वर्णन है तथापि द्विजातियों के लिए नित्य सुख प्राप्ति और सर्वथा दुःख की निवृत्ति रूप मोक्ष हेतु गायत्री मंत्र माना है।

गायत्री वेद जननी गायत्री पाप नाशिनी।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिबि चेह च पावनम्॥

(याज्ञ.)

गायत्री वेद की जननी स्वरूपा तथा पातक हारिणी है, इससे अधिक पवित्र वस्तु दिव्य लोक और संसार में कोई नहीं है।

अकारंचाप्युकारंचा भकारंच प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति चः॥
त्रिम्य एव तु वेदभ्यः पादं पादमदूदुहत्॥

(मनु संहिता २/७६-७७)

अकार "विष्णु" उकार "ब्रह्मा" तथा मकार महेश्वर है, ये वर्णात्रय है-भूः (भूर्लोक-पृथ्वी) भुवः (पितृ लोक) तथा स्वः (स्वर्ग लोक) ये तीन देव रूपा और स्थूल रूप लोक है एवं गायत्री के एक एक पाद ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद हैं। पद्मयोनि ब्रह्मा ने इन

वेदत्रय का नवनीत सुगंध सारांश मधु ग्रहणकर मधुर अथ च सुपेय इस गायत्री को प्रगट किया जिसके ज्ञान ध्यान से वेद और विश्व का ज्ञान तथा ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

यथा च मधु पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयंः
एवं हि सर्व वेदानां गायत्री सारमुच्यते॥

(वृहद्योगी याज्ञ. ४/१६)

जैसे पुष्पों की सुगन्ध का सार मधु, दूध का सार घृत और रस सार का दूध है उसी प्रकार वेदों का तत्व "गायत्री" है।

गायत्री वेद माता–गायत्री छन्दसांमातेति (ना. उप. १५/१) दूसरी गायत्री छन्द सब छन्दों में सर्वश्रेष्ठ है। गायत्री मंत्र सब वेदों का सार है–
तत्र गायत्रीं प्रणवादि सप्तव्या हृत्युपेतां शिरः समेतां सर्व वेदसार मिति वदन्ति–यह गायत्री का आद्य शंकर भाष्य है। इस गायत्री में प्रत्येक पद तथा अक्षर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें प्रथम अक्षर ॐ कार है।



॥ ॐकार ॥

ॐकारं विन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥

ॐकार बिन्दु सहित, ध्यान धरें अवतार।
सिद्धनाथ सो आत्मा नमस्कार ॐकार॥

ॐ ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपख्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।
यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥

(माण्डूक्य उप गो.शं. १)

ॐ यह अक्षर ही सब कुछ है। यह जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान है उसी की व्याख्या है, इसलिये यह सब कुछ ओंकार ही है। इसके सिवा जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु है वह भी ॐ ओंकार ही है॥ १॥

ॐ यह जो परापर ब्रह्मरूप अक्षर ॐ है उसका उपव्याख्यान-ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय होने के कारण उसकी समीपता से स्पष्ट कथन का नाम उपव्याख्यान-

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथ मुपासीत।
ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्॥ १॥

(छा. उप. १/१/१)

ॐ यह अक्षर उद्गीथ है, इसकी उपासना करनी

चाहिये। ॐ ऐसा उच्चारण करके उद्गान (उच्च स्वर से सामगान) करता है उस उद्गीथोपासना की व्याख्या की जाती है–

उद्गीथ शब्द वाच्य ॐ इस अक्षर परमात्मा का सबसे समीपवर्ती प्रियतम नाम है। इसका प्रयोग–उच्चारण करने से वह प्रसन्न होता है। उच्चारण ही वाक ऋक है–प्राण साम है और ॐ अक्षर उद्गीथ है–

वागेवर्क प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः। तद्वाएतन्मिथुनं यद्वाक्य प्राणश्चर्क च साम चः॥ ५॥

(छा. उ. १/१/५)

यह ऋक + सामरूप वाक + प्राण है परस्पर मिथुन (जोड़) उपासना है।

वाक और प्राण क्रमशः ऋक और साम के कारण हैं। इसलिये वाक ही ऋक है और साम ही प्राण है। क्रमशः ऋक और साम के कारण रूप वाक और प्राण का ग्रहण करने से सम्पूर्ण ऋक और सम्पूर्ण साम का ग्रहण अन्तर्भाव हो जाता है तथा सम्पूर्ण ऋक और सम्पूर्ण साम का अन्तर्भाव होने पर ऋक और साम से सिद्ध होने वाले सम्पूर्ण कर्मों का अन्तर्भाव हो जाता है और उनका अन्तर्भाव होने पर सम्पूर्ण कामनाएँ उनके अन्तर्भूत हो जाती हैं।

इस प्रकार उदगीथ से सर्वकामनाएँ नष्ट होकर उपासना पवित्र विशुद्ध रूप स्वयं उद्‌गीथ ॐ स्वरूप होकर मोक्ष को प्राप्त होता है। यह उद्‌गीथ ब्रह्म विद्या पूर्ण विशुद्ध रूप से ब्रह्म श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु से ग्रहीत होती है जिससे सामवेदीय गायत्री का स्वरूप प्रगट हो जाता है।

अवतीति–ओम इस व्युत्पत्ति से सर्वरक्षक परमात्मा का नाम ओम् है। सम्पूर्ण वेद एक स्वर से ॐकार की महिमा गाते हैं।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीभ्योमित्येतत्॥ १५॥

(कठ. उप १/२/१५)

सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं–समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति के साधन कहते हैं–जिस को जानने की इच्छा से मुमुक्षु जन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उसी पद को मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ– ॐ यही वह पद है। यह जो ॐ है यानी जो ॐ शब्द का वाच्य और ओम "ॐ" ही जिसका प्रतीक है वही यह पद है जिसे तू जान।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छतितस्य तत्॥ १६॥

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेत दालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ १७॥
(कठ. उ. १/२/१६-१७)

यह अक्षर ही ब्रह्म है-यही सगुण ब्रह्म है और यही पर-निर्गुण ब्रह्म है। इस अक्षर को जानकर जो जिसकी इच्छा करता है वही उसका हो जाता है। यह ॐ दोनों पर और अपर का प्रतीक है-यही ॐ उपास्य ब्रह्म है-यह पर उपास्यता से तो केवल जाना जाता है-ॐ सोऽहम् अपरोक्षानुभूति और अपर ब्रह्म उपास्यता से प्राप्त किया जा सकता है-ॐ प्रत्यक्षानुभूति। इसलिये यही ॐ श्रेष्ठ आलम्बन है-यह ओंकार रूप आलम्बन ब्रह्म प्राप्ति के (गायत्री आदि) सभी आलम्बनों में श्रेष्ठ यानी सबसे अधिक प्रशंसनीय है। सम्पूर्ण गायत्री इसी में बीज रुप से स्थित और विलीन है। पर और अपर ब्रह्म विषयक होने से यह आलम्बन पर और अपर रूप है। इसलिये इस आलम्बन को जान कर साधक ब्रह्मलोक अर्थात् पर ब्रह्म में ब्रह्मत्व को प्राप्त होकर ब्रह्म के समान उपासनीय होता है।

प्रणवोह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः।
अपूर्वोऽनन्तरोऽबाह्योऽन परः प्रणवोऽव्ययः॥ २६॥

(माण्डू. उप. गो. श. २६)

ॐ ओंकार ही परब्रह्म है और ओंकार ही अपर ब्रह्म है। पर ओर अपर ब्रह्म यह ॐ प्रणव है। यह ओंकार अपूर्व (अकारण) वस्तुतः मात्रारूप पादों के क्षीण होने पर पर-आत्मा ही ब्रह्म है इसलिये इसका कोई पूर्व यानी कारण न होने से यह अपूर्व है। इसका कोई अन्तर भिन्न जातीय भी नहीं है-इसलिए यह अनन्तर है तथा इससे बाह्य भी कोई और नहीं हैं-इसलिये यह अबाह्य है ओर इसका कोई अपर कार्य भी नहीं है-इसलिए यह अनपर है। तात्पर्य यह है कि यह बाहर भीतर से अजन्मा तथा सैन्धवघन के समान प्रज्ञानघन ही है।

सर्वस्य प्रणवो ह्यादिर्मध्यमन्तस्तथैव च।
एवं हि प्रणवं ज्ञात्वा व्यपूनुते तदनन्तरम्॥ २७॥

(माण्डू. उप. गो. शं. २७)

ॐ प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त अर्थात् उत्पत्ति स्थिति और प्रलय है। जिस प्रकार मायामय हाथी-रज्जु में प्रतीत होने वाला सर्प-मृगतृष्णा और स्वप्नादि के समान उत्पन्न होने वाले आकाशादि

रूप प्रपंच के कारण मायावी आदि हैं उसी प्रकार मायावी आदि स्थानीय उस प्रणव रूप आत्मा को जानकर विद्वान ज्ञानी तत्काल ही तद्रूपता को प्राप्त हो जाता है—ॐ प्रणवो सोऽहम् अपरोक्षानुभूति भूमा को प्राप्त हो जाता है।

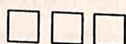
प्रणवंहीश्वरं विद्यात्सर्वस्य हृदि संस्थितम्।
सर्वव्यापिनमोङ्कारं मत्वा धीरो न शोचति॥ २८॥

(माण्डू. उ. गो. श. २८)

प्रणव ही समस्त प्राणी समुदाय के स्मृति प्रत्यय के आश्रय भूत हृदय में स्थित ईश्वर है। बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष आकाश के समान सर्वव्यापी ओंकार को असंसारी आत्मा (शुद्ध आत्म तत्व) जानवर शोक के कारण का अभाव हो जाने से शोक नहीं करता–आत्मवेता शोक को पार कर जाता है।

युंजीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्य युक्तस्त न भयं विद्यते क्कचित्॥

(माण्डू. उ. गो. श. २५)



॥ ॐ प्राणो गायत्री ॥

जो हृदय में स्थित प्रणव रूप से ईश्वर वर्तमान है उस परमार्थ स्वरूप ॐकार में चित्त को युक्त-समाहित करो। कैसे?–प्रणव (प्राणो का रव) हृदयस्थ प्राणरूप से सेतुबन्ध–हृदय स्फुरण द्वारा हृदयकाश ईश्वर में समाहित हो जाओ। यह ओंकार निर्भय ब्रह्म पद है इसलिये इस ॐकार में नित्य समाहित रहने वाले पुरुष को कहीं भी भय नहीं होता अर्थात् भय (काल) को प्राप्त नहीं होता–वह ज्ञानी पुरुष भय को प्राप्त नहीं होता, निर्भय रहता है।

ओकारं पादशो विद्यात्पादा मात्रा न संशयः।
ओकारं पादशो ज्ञात्वा न किंचिदपि चिन्तयेत॥

(माण्डू. उ. गो. श. २४)

ओंकार को एक एक पाद करके जाने–पाद ही मात्राएँ हैं–इसमें संदेह नहीं। ओंकार को पाद क्रम से जानकर कुछ भी चिन्तन न करे अर्थात् ओंकार का पाद क्रम से ज्ञान हो जाने पर कृतार्थ हो जाने के कारण किसी भी दृष्टार्थ (ऐहिक) अथवा अदृष्टार्थ (पारलौकिक) प्रयोजन का चिन्तन न करे वह अपने ईश्वर स्वरूप में स्थित जीवन मुक्त है।

यह आत्मा अक्षर दृष्टि से ॐकार है और यह

मात्राओं को विषय करके स्थित है। पाद ही मात्रा है और मात्रा ही पाद है-वे मात्रा अकार उकार और मकार हैं। यह आत्मा मध्यक्षर है-अक्षर का आश्रय लेकर-जिसका अभिधान की प्रधानता से वर्णन किया जाय उसे मध्यक्षर कहते हैं। किन्तु वह अक्षर है क्या? वह ॐओंकार है। यह ओंकार पादरूप से विभिक्त किये जाने पर अधिमात्र यानी मात्रा को आश्रय करके वर्तमान रहता है-इसलिये इसे अधिमात्र कहते हैं। सो किस प्रकार? क्योंकि आत्मा के जो पाद हैं वे ही ओंकार की मात्राएँ अकार, उकार और मकार हैं और आत्मा के पाद-विश्व, तैजस और प्राज्ञ हैं, वही ओंकार ब्रह्म-विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर है, वही जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति रूपा है तथा स्थूल, सूक्ष्म औक कारण है। ये त्रिपाद हैं।

॥ अकार ॥

१-ब्रह्म का प्रथम पाद "**विराट**"-आत्मा का प्रथम पाद "**विश्व**" और ओंकार की प्रथम मात्रा रूप प्रथम पाद "**अकार**"-ये तीनों समान धर्म होने से **विश्व-विराट-अकार** का अभेद चिंतन जो उपासक जानता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है और महापुरुषों में प्रधान होता है।

॥ उकार ॥

आत्मा का द्वितीय पाद **"तैजस"**–ब्रह्म का द्वितीय पाद **"हिरण्य गर्भ"** ओंकार की द्वितीय मात्रा **उकार** इन तीनों में समान धर्म होने से तीनों का अभेद चिंतन जो उपासक जानता है वह ज्ञान संतान का उत्कर्ष करता है। वह ज्ञानी सबके प्रति समान होता है और उसके वंश में कोई ब्रह्मज्ञान हीन पुरुष नहीं होता।

॥ मकार ॥

आत्मा का तृतीय पाद **"प्राज्ञ"** और ब्रह्म का तृतीय पाद **"ईश्वर"** व ओंकार की तृतीय मात्रा **"मकार"** इन तीनों में कारण उपाधि होने से एक धर्मा जो उपासक अभेद चिंतन द्वारा जानता है उसे इस सम्पूर्ण जगत का बोध हो जाता है–यथार्थ स्वरूप जान लेता है और उसका लय स्थान हो जाता है। इस प्रकार जो पुरुष स्थूल-सूक्ष्म-कारण व जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों स्थानों में उपरोक्त ये बतलाई गई तुल्यता अथवा समानता को चिन्तन से निश्चय पूर्वक जानता है वह ज्ञानी आत्मज्ञ केवली महामुनि समस्त प्राणियों का पूजनीय और वंदनीय होता है ऐसा ब्रह्मवेता ही सतगुरु के योग्य है।

पूर्वोक्त समानताओं से आत्मा के पादों का मात्राओं के साथ एकत्व करके ॐकार को जानते हुए जो उसका चिंतन-ध्यान करता है उसे "**अकार**" विश्व को प्राप्त करा देता है तथा "**उकार**" तैजस को और "**मकार**" प्राज्ञ को-किन्तु अमात्रा में गति नहीं होती क्योंकि मकार का क्षय होने पर बीज भाव का क्षय हो जाने से मात्राहीन ॐकार में कोई गति नहीं होती। मात्रा रहित ॐकार तुरीय आत्मा पर ब्रह्म है।

॥ अमात्रा ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः
शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव
संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ॥ १२ ॥

(माण्डू. उ. गौ. श. १२)

"ब्रह्म" एक अखण्ड, अद्वैत होने पर भी पर-ब्रह्म और अपर-ब्रह्म (ईश्वर) कारण कार्य रूप विशुद्ध माया से रहित और शुद्ध माया सहित दो विभागों में हैं। अपर-ब्रह्म ही शब्द-ब्रह्म है, इसे ॐ कहते हैं-इस शब्द ब्रह्म को भली भाँति जान लेने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है-**शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।**

शब्द ब्रह्म का स्वरूप जानना और उसे जान कर

उसका अतिक्रमण करना यही मुमुक्षु का एक मात्र लक्ष्य है। उसका अतिक्रमण किये बिना विशुद्ध परम तत्व रूप चैतन्य का साक्षात्कार सम्भव नहीं है।

"शब्द ब्रह्म" जिसे प्रणव या ॐकार कहते हैं। यह ॐ अपर–ब्रह्म है। साथ ही पर ब्रह्म से अभिन्न रूप भी है। ॐकार में मात्राएँ हैं ये अपर ब्रह्म तीन मात्राएं तीन पाद रूप है और ॐकार का अमात्रक अर्थात् मात्राहीन शुद्ध रूप–पर ब्रह्म है। उसकी मात्रा युक्त अवस्था के भी दो भेद हैं–एक शुद्ध और दूसरा अशुद्ध। उसका मात्रा युक्त शुद्ध रूप "ईश्वर" और मात्रा युक्त अशुद्ध रूप "जीव" है। उस के मात्रा युक्त शुद्ध रूप का परिचय ध्यान के द्वारा ईश्वर साक्षात्कार, योगियों को मिलता है और अमात्रा–अप्रमेय, अखण्ड, मायातीत विशुद्ध है उस का परिचय ज्ञान योगियों को अपरोक्षानुभूति भूमा द्वारा मिलता है।

ॐकार की मात्रा में दो भेद हैं–स्थूल मात्रा और तथा सूक्ष्ममात्रा। स्थूल मात्रा–अकार, उकार और मकार बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना व उन्मना है। चिन्तन और ध्यान के द्वारा उन्मना पद तक आरोहण आवश्यक है। जब तक इस पद की प्राप्ति नहीं होती तब तक मनोराज्य का अवस्थान जानना होगा। इस मनोराज्य में

शुद्ध-अशुद्ध दो विभाग हैं। अशुद्ध विभाग मायिक है और शुद्ध विभाग शुद्ध माया अर्थात् योगमाया का है। शुद्धाशुद्ध विभाग में प्रणव के प्रथम तीन अवयव कार्य करते हैं-अकार, उकार और मकार-तीन भूमिकाएँ स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण-तीन पाद अवस्थाएँ-जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति-तीन पाद विश्व, तैजस, तथा प्राज्ञ-तीन ब्रह्म पाद विराट, हिरण्यगर्भ तथा ईश्वर। अमात्रा के भी दो विभाग हैं शुद्ध और विशुद्ध-ईश्वर और ब्रह्म-तुरिया और तुरियातीत। ईश्वरीय शुद्ध राज्य में तीन विभाग हैं-एक "बिन्दु" का, दूसरा "नाद" का और तीसरा "कला" का व कलातीत विशुद्ध ब्रह्म है। प्रणव ॐ की आखरी कला उन्मना है। उन्मना वास्तव में अमात्रा है-उसकी मात्रा नहीं है। क्योंकि वहाँ मन भी नहीं है। मन की ही मात्रा होती हैं-विशुद्ध चैतन्य की मात्रा नहीं होती। ज्ञान योगी का परम उद्देश्य-स्थूल मात्रा से क्रमशः सूक्ष्म मात्रा में होते हुए अमात्रक स्थिति में पहुँचना है। अमात्रा-उन्मना में न मन है, न मात्रा, न काल है, न देश है, न देवता है, न अवस्था है, न पाद है, न प्रपंच-कोई भी माया, व माया का अंश नहीं है। वह विशुद्ध चिदानन्द पर ब्रह्म सत्य भूमा है!

प्रणव ॐकार-प्राणों का रव हृदय-स्फुरण-ओंकार

की तीन मात्रा, आत्मा के तीन पाद और शब्द ब्रह्म कें तीन रूप इकाई अनाहत नाद सर्ववर्णों की समष्टि-भावापत्ति तथा अष्टवर्गीय माया का शुद्ध स्वरूप स्वयं चैतन्य और स्वयं प्रकाशक अपर ब्रह्म का चिन्तन और ध्यान द्वारा साक्षात्कार करना है। वही शब्द ब्रह्म प्रणव ॐ विशुद्ध अमात्रा-उन्मना-मायातीत-तुरीयातीत भूमा की अपरोक्षानुभूति है।

मात्रा रहित ॐओंकार तुरीय आत्मा है। अमात्रा-जिसकी मात्रा नहीं है वह अमात्रा ओंकार चौथा तुरिया केवल आत्मा ब्रह्म है। अभिधान रूप बाणी और अभिद्येय रूप मन का क्षय उन्मना हो जाने के कारण वह अव्यवहार्य केवल परमार्थ है तथा वह प्रपंच की निषेधावधि मंगलमय और अद्वैत स्वरूप शिव है। वही पूर्वोक्त विज्ञानवान उपासक द्वारा प्रयोग से जाना हुआ तीन मात्रा वाला ओंकार-तीन पाद वाला आत्मा ही है-वह आत्मा मैं हूँ और वह आत्मा ओंकार शिव है। इसलिए वह शिव मैं हूँ "**शिवोऽहम्**" जो इस प्रकार अमात्रक उन्मना "ब्रह्म" जानता है या इस प्रकार उस की उपासना करता है-वह स्वतः ही अपने विशुद्ध परमार्थिक अमात्रक आत्मा में प्रवेश करता है-भूमा की अपरोक्षानुभूति करता है। ऐसा ज्ञानयोगी परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता तीसरे बीज भाव को भी दग्ध करके आत्म

स्वरूप ब्रह्म में प्रवेश करता है। इसलिए उसका पुनर्जन्म नहीं होता क्योंकि तूरीय आत्मा अबीजक है।

अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशम शिवः।
ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः॥ २९॥

(माण्डू. उप. गौ. श. २९)

अमात्रा तुरीय ओंकार परब्रह्म है। जिसने मात्रा हीन व अनन्त मात्रा वाले द्वैत के उपशम स्थान–शिव जो मंगलमय ओंकार है उसको जाना है पहचाना है, वही परमार्थ तत्व का मनन करने वाला होने से व उन्मना–मन के परे, मन से रहित अमनि–"मुनि" है–दूसरा पुरुष शास्त्रज्ञ होने पर भी मुनि नहीं है।

"ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत्"

(छा. उ. १/१/१)

यह अक्षर ॐ उद्गीथ है, इसकी उपासना करनी चाहिये। किसी समय देवताओं ने मृत्यु से भयभीत होकर त्रयी विद्या विहित कर्मों का अनुष्ठान करके कर्मानुष्ठान द्वारा अपने को वेदों से आच्छादन कर लिया इसलिए वेदों का नाम छन्द पड़ा। लेकिन जैसे धीवर जल में मछलियों को देखता है, इसी प्रकार काल रूपी मृत्यु ने कर्मरूपी जल में देवताओं को देख

लिया अर्थात् कर्मजल क्षय से देवताओं को मारने का निश्चय किया। देवताओं ने भी मृत्यु के अभिप्राय को जान लिया, तब वे कर्मानुष्ठान छोड़कर ॐकार की उपासना में तत्पर हुए और ॐकार की उपासना करके वे अमृत और अभय हो गये, क्योंकि प्रणव ॐकार साक्षात् पर ब्रह्म है जिसमें काल का पसारा व बल नहीं है। पूर्वकाल में प्रजापति के पुत्र देवता और असुर किसी कारण वश परस्पर युद्ध करने लगे। "देवासुर संग्राम" इस का अभिप्राय "देव" शास्त्रालोकित इन्द्रिय वृत्तियाँ हैं तथा उसके विपरीत विविध विषयों में रमण करने वाली स्वभाव की तमोमयी वृत्तियाँ ही असुर कहलाती हैं। ये एक दूसरे के विषयों के अपहरण रूप संयत हुए ही संग्राम रूप है। यह देवासुर संग्राम अनादि काल से सम्पूर्ण प्राणियों में प्रत्येक देह में होता आ रहा है। संग्राम में असुरो का पराभाव करने हेतु देवताओं ने इस प्रणव ॐकार उद्गीथ का अनुष्ठान किया। देवों ने नासिका में रहने वाले प्राण के रूप में उद्गीथ की उपासना की किन्तु असुरों ने अधर्म और आसक्ति रूप अपने पाप से बेध दिया। नासिका सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों को सूंघता हुआ आसक्ति रूप पाप से बिंधा हुआ है। फिर देवताओं ने वाणी के रूप में उद्गीथ की उपासना की

किन्तु असुरों ने उसे पाप से विद्ध कर दिया। यह लोक वाणी द्वारा सत्य और मिथ्या दोनों बोलता है इसलिये वह पाप से बिंधी हुई है। फिर देवताओं ने चक्षु के रूप में उद्गीथ की उपासना की किन्तु असुरों ने उसे भी पाप से विद्ध कर दिया। यह लोक चक्षु देखने योग्य और न देखने योग्य दोनों प्रकार के पदार्थों को देखता है इसलिए चक्षु इन्द्रिय पाप से बिंधा हुआ है। फिर देवताओं ने श्रोत के रूप में उद्गीथ की उपासना की, असुरों ने उसे भी पाप से बेध दिया। यह लोक श्रोत्र सुनने योग्य और न सुनने योग्य दोनों प्रकार की बातों को सुनता है क्योंकि वह श्रोत्रेन्द्रिय पाप से बिंधा हुआ है। फिर देवताओं ने रसना के रूप में उद्गीथ उपासना की। असुरों ने उसे भी पाप से बेध दिया। यह लोक रसना से भक्ष्य और अभक्ष्य भोजन तथा सात्विक और तामसिक सर्व प्रकार के रसों का स्वाद व पान करता है क्योंकि वह पाप से बिंधा है। फिर देवताओं ने त्वचा के रूप में उद्गीथ उपासना की। असुरों ने उसे भी पाप से बेध दिया। यह लोक त्वचा रूपी इन्द्रिय पाप से बिंधा हुआ है। फिर देवताओं ने मन के रूप में उद्गीथ की उपासना की। असुरों ने उसे भी पाप से बेध दिया। इसी से मन के द्वारा लोक संकल्प करने योग्य और संकल्प

न करने योग्य दोनों ही संकल्प करता है क्योंकि वह पाप से बिंधा हुआ है। इस प्रकार सर्व इन्द्रियाँ और देवता असुर पाप से विद्ध हैं। इस प्रकार विचार करके इन सबका अपवाद किया है कि निश्चय ही सर्व इन्द्रियाँ और देवता पाप से संयुक्त हैं। इसलिए साधक ने सर्व इन्द्रियों और देवताओं को त्याग कर मुख्य प्राण के रूप में उद्गीथ उपासना की। यह मुख्य प्राण हृदयस्थ स्फुरण है जो प्राणों का रव प्रणव रूप है। इस प्राण के समीप पहुँच कर असुर गण इस प्रकार विद्ध्वंस हो गये जैसे दुर्भेद्य पाषाण के पास पहुँच कर मिट्टि का ढ़ेला नष्ट हो जाता है। असुर गण पूर्ववत उसे प्राप्त होते ही प्राण का कुछ भी न बिगाड़ कर केवल उसे विद्ध करने का संकल्प करके ही विध्वस्त हो गये। इस प्रकार असुरों से पराभूत न होने के कारण मुख्य प्राण शुद्ध रहा। इस शुद्ध हृदयस्थ प्राण रूप से उद्गीथ उपासना ही वसिष्ठ तप है। इसी उद्गीथ वसिष्ठ तप के बल से ब्रह्मा सृष्टि रचता है और विष्णु पालन करता है तथा शिव संहार करता है।

आगाता हवै कामानां भवति य एत देवं।
विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम॥ १४॥

(छा. उ. १/२/१४)

इसे इस प्रकार जानने वाला जो विद्वान इस उद्गीथ संज्ञक अक्षर ॐ की उपर्युक्त गुण वसिष्ठ प्राण रूप से उपासना करता है वह सर्व कामनाओं का अगान करने वाला होता है–ऐसी यह उद्गीथ उपासना आत्मविषयिणी अध्यात्म उपासना है।

एक बार देवताओं ने प्रजापति से कहा–भगवन् ज्ञानोपदेश कीजिये। यह सुनकर प्रजापति बोले:–यह आत्मा अज, अमर, अजर, अमृत, अभय, अशोक, अमोह, अनशनाय, अपिपासा तथा अद्वेत है और यह अकार इन सभी विशेषण शब्दों का आदिभूत प्रणव की प्रथम मात्रा है। इसके द्वारा वशिष्ट आत्मा का चिन्तन कर फिर–उदुत्कृष्ट (अति श्रेष्ठतम) उदुत्पादक (सब के स्त्रष्टा) उदुत्प्रवेष्टा (परमात्म रूप से संसार की सृष्टि करके जीव रूप से प्रवेश करने वाला) उदुत्थापयिका (नियंता) उदुद्द्रष्टा (विष्णु रूप से सब पर दृष्टि रखने वाला) उदुत्कर्ता (सर्वोत्कृष्ट कर्ता) उदुत्पथवारक (विवेक में प्रवृत्त करने वाला) उदुद्रासक (रुद्र रूप से संहारक) उदुद्रभ्रान्ता (कारण रूप से सर्वत्र व्यापक) तथा उदुत्तीर्ण विकृति (साक्षी रूप होने से सब विकारों के ऊपर उठे होने) के कारण उकार पर ब्रह्म का चिन्तन करे तत्पश्चात् अकारण स्वरूप इस आत्मा को उकार के पूर्वार्धभागस्वरूप ब्रह्म के प्रति आकृष्ट करे। आत्मा की ब्रह्म के साथ एकता करे

अर्थात् आत्मा को ब्रह्म स्वरूप जाने। फिर उकार के उत्तरार्ध भाग अर्थात् उत्तर मात्रा द्वारा पूर्वोक्त ब्रह्म को ग्रहण करके मकार के अर्थभूत इस आत्मा के साथ एकीभूत करे। ब्रह्म और आत्मा को एक जाने-सोऽहम्।

प्रणव की तीसरी मात्रा मकार के द्वारा आत्मा को ग्रहण इसलिए किया जाता है कि मकार और आत्मा दोनों ही महत् (सर्वव्यापी) महस् (चिन्मय तेज से युक्त) मान (सर्वसाधक प्रमाण स्वरूप) मुक्त, महादेव, महेश्वर, महासत, महाचित्त, महानंद तथा महाप्रभु है। यह आत्मा महत्वादि गुणों से विशिष्ट है और "मकार", "महत" शब्दों का आदि होने के कारण ततस्वरूप है। जो यों चिन्तन-ध्यान प्रसंख्यान और ज्ञान द्वारा जानता है-वह शरीर रहित, इन्द्रिय रहित, प्राण रहित तम, (मोह एवं अज्ञान) से रहित शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप स्वराट (स्वयं प्रकाश ब्रह्म) हो जाता है-**अयम् आत्मा ब्रह्म।**

श्रृंगं श्रृङ्गार्धमाकृष्य श्रृङ्गेणानेन योजयेत्।
श्रृङ्गमेनं परे श्रृङ्गे तमनेनापि योजयेत॥

श्रृङ्गम = प्रणव की प्रथम मात्रा अकार के अर्थभूत आत्मा को-**श्रृङ्गाधर्म अकृष्य** = द्वितीय मात्रा उकार के पूर्वार्ध-ब्रह्म के प्रति अकृष्ट कर के अर्थात् आत्मा

और ब्रह्म की एकता अहम् आत्मा का अनुभव करके– **अनेन श्रृङ्गेण-योजयेत्** = फिर मकार के अर्थभूत इस आत्मा के साथ उकार के उत्तरार्ध स्वरूप ब्रह्म को भी संयुक्त करे अर्थात् ब्रह्म की आत्मा के साथ एकता "**अहं ब्रह्म**" चिन्तन करे–**एनम् श्रृङ्गम्** = अहं शब्द के आदिभूत प्रणवस्थ अकार के अर्थ रूप आत्मा को– **परे श्रृङ्गे** = ब्रह्म शब्द के अन्तिम अक्षर मकार से अभिन्न जो प्रणवस्थ मकार है उसके अर्थ भूत ब्रह्म के साथ (उकार द्वारा एकीभूत करके) **तम्** = उस अंतिम मात्रा रूप परमात्मा को–जो प्रणव के अकार द्वारा प्रतिपाद्य है–**अनेन अपि योजयेत** = इस मन आदि के रक्षक एवं साक्षी प्रणवस्थ मकार के अर्थभूत आत्मा के साथ संयुक्त "**अस्मि**" करे अर्थात् परमात्मा और आत्मा की एकता का अनुभव "**अहं ब्रह्मास्मि**" चिन्तन करे। **अहं ब्रह्मास्मि!**

ओतमोतेन जानियादनुज्ञातारमान्तरम।
अनुज्ञामद्वयं लब्ध्वाउपद्रष्टारमा व्रजेत्॥

॥ उपद्रष्टारमाव्रजेत॥

ओत (व्यापक) आत्मा को ओत (प्रणव) के द्वारा जाने। फिर अनुज्ञाता रूप प्रणव के द्वारा अनुज्ञाता रूप आत्मा को जाने। तत्पश्चात अनुज्ञा–प्रणव के द्वारा

अनुज्ञा रूप आत्मा को जाने तथा अविकल्प रूप प्रणव द्वारा अविकल्प रूप आत्मा को जान कर उपद्रष्टा भाव "प्रज्ञानंदं ब्रह्म" को प्राप्त हो-साक्षी रूप से स्थित हो जाय-"साक्षी शिवोऽहम्"। इस प्रकार प्रणव ॐकार:-

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८-१३)

अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद् ब्रह्माक्षरं परम्।
मनोयच्छेज्जितश्वासो ब्रह्म बीजम विस्मरन्॥

(श्री मद् भागवत)

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजति क्रियाः।
अक्षरमक्षयं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः॥

(मनुस्मृति)

तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तर्थभावनम्॥

(योग दर्शन)

प्राण रव प्रणवः परमेश्वरः शब्द ब्रह्म।

(मुक्त रहस्य)

इस प्रकार अनेक श्रुति-स्मृति-पुराण आदि में शब्द ब्रह्म प्रणव ॐकार की अत्यन्त महिमा और मूलस्वरूपता गायी गई है। इस ॐ के ऋषि ब्रह्मा हैं-छन्द गायत्रि है और सर्वकर्मों के आरम्भ में इस का विनियोग है

अर्थात सम्पूर्ण कर्मों के प्रारम्भ में ॐकार का प्रयोग करना चाहिये। **तनेयं त्रयी विद्या वर्तते**–यह छन्दोग्य श्रुति है। तेन ॐ कारेण।

हे गायत्री! तू त्रैलोक्य रूप प्रथम पाद से एक पदी है–तीन वेद रूपा द्वितीय पाद से द्विपदी है–प्राण अपान और व्यान रूप तीसरे पाद से त्रिपदी है और तुरीय पाद से चतुष्पदी है–इन से परे निरुपाधि रूप से तू "अपद" है–क्योंकि तू जानी नहीं जाती। अतः व्यवहार के अविषय भूत एवं समस्त लोकों से ऊपर विराजमान तेरे दर्शनीय तुरीय पद को नमस्कार है।

यह गायत्री गयों का त्राण करने वाली होने से "गायत्री" है। वे गय कौन है? वागादि प्राण ही गय है, क्योंकि वे शब्द करते हैं–यह गायत्री इनका त्राण करती है। हृदयस्थ प्राण ही गय है, इनमें सर्वदा निरन्तर अखण्ड गान करने से यह गायत्री है–प्राण ही गायत्री है। इस प्राण का उपदेश हो जाने पर यह प्राण ही प्रणव रूपा गायत्री में समर्पित हो जाते हैं–यही गायत्री पणिधान है। इस गायत्री के समीप जाकर इस में स्थित हो जाना ही उपस्थान उपासना है और गय गमन करना "ग्य" ही मोक्ष है। यह "ग्य" ब्रह्म है–जो इस में गय–रमण करता है वह ब्राह्मण है। इसलिए हे ब्राह्मण! तू इसमें रमण कर, इसकी उपासना कर। यह गायत्री उपासना गायत्री रूप उपाधि से विशिष्ट

ब्रह्म की उपासना है। यह सम्पूर्ण छन्दों में गायत्री छन्द ही प्रधान भूत है। इसका प्रयोग करने वाले के गय का त्राण होता है। इसलिए इसकी उपासना का विधान है। इसके सिवा ब्राह्मणों के जन्म का हेतु होने से भी इसका विधान किया जाता है–"**गायत्री से ब्राह्मण की रचना की, त्रिष्टुप से क्षत्रिय की और जगती से वैश्व की**" इस श्रुति के अनुसार द्विजोत्तम का द्वितीय जन्म गायत्री के कारण है। यह ब्राह्मणत्व गायत्री जन्ममूलक है इसलिये गायत्री का तत्व जानने वाला व गायत्री उपासना करने वाला ही निरंकुश द्विज श्रेष्ठ है–इसलिए ब्राह्मण के लिए परम पुरुषार्थ साधन गायत्री की उपासना का विधान है। हे ब्राह्मण! तू गायत्री की उपासना कर!

कुण्डलिया

प्रणव बजा दिल देश में, मगन भया चित चोर॥
मगन भया चित्त चोर, बंध कोशों का टूटा।
प्रगटा आदि नाद, रूप सोऽहम् का फूटा॥
देह नहीं मैं आत्मा, छूटा जड़ अध्यास।
सोऽहम् पद ताली लगी, चिदानन्द घर बास॥
ज्ञानी की गम प्रगट है, बेगम अनुभव रूप।
सत्य सनातन भाण हूँ, नहीं छाया नहीं धूप॥

सिद्धनाथ सद् केवली, जीवन मुगति शोर।
प्रणव बजा दिल देश में मगन भया चित चोर॥

॥ ॐ भूर्भूवः स्व॥

ये तीन व्याहृतियां हैं–इन की महिमा का वर्णन वेदों में खूब भरा पड़ा है। भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ–ये आठ अक्षर हैं। आठ अक्षर वाला ही गायत्री का प्रथम पाद है। यह भूमि आदि प्रत्यक्ष लक्षणों वाला त्रिलोक रूप गायत्री का प्रथम पाद अष्टाक्षर रूप की समानता जो जानता है वह इस त्रिलोकी में जितना कुछ है उस सबको जीत लेता है और यदि वह धनपूर्ण तीनों लोकों का दान ले ले तो भी उसे कोई दोष नहीं लगता॥ १॥

ऋच, यजूंषि, सामानि–ये त्रयी विद्या के अक्षर हैं। ये भी आठ ही हैं–इस प्रकार गायत्री का एक अर्थात् द्वितीय पद भी अष्टाक्षर वाला है। अष्टाक्षरत्व में समानता होने के कारण ही यह ऋग्यजुः सामरूप गायत्री का द्वितीय पाद है। इस गायत्री के इस त्रैविद्य (तीनों वेद) रूप पद जो जानता है उसे त्रयी विद्या से जितना फल प्राप्त किया जाता है सब मिल जाता है॥ २॥

प्राण, अपान, व्यान–ये भी आठ अक्षर प्राणदि के नाम रूपा हैं–यह गायत्री का तृतीय पाद है। जो इस प्रकार गायत्री के इस तृतीय पाद को जानता है वह जितना प्राणी समूह है उस सभी को जीत लेता है ॥ ३ ॥

इस तरह लोकात्मा, वेदात्मा और प्राणात्मा ये तीनों ही गायत्री के तीन पाद हैं–पर ब्रह्म परमात्मा ही चतुर्थ पाद है। यह चतुर्थ तुरीय पद–जो तपता प्रकाशित होता है दर्शतं एवं परोरजा पद है। दर्शतं पदम्–यह आदित्य मण्डलस्थ पुरुष दीखता है। परोरजा–यह सभी लोकों को प्रकाशित करता है। वह यह गायत्री इस चतुर्थ दर्शत–परोरजा पद में प्रतिष्ठित है। वह पद सत्य में प्रतिष्ठित है। चक्षु ही सत्य है क्योंकि यह सब का प्रकशिक है। यह चक्षु के माध्यम से तपता–प्रकाशक आत्मस्त आदित्य ही सत्य है। आदित्य और चाक्षुष पुरुष को "अहर" और "अहम्" गुह्य नाम से उपनिषदों में कहा गया है। सो "अहर" आदित्यं पुरुष "अहम" आदित्य आत्मा अर्थात सोऽहमस्मि अमृतम्–वह मैं अमृत हूँ। जो इस प्रकार जानता है वह मुक्त है।

एक बार प्रजापति ने लोकों में सार वस्तु को जानने की इच्छा से "**ॐ भूर्भुवः स्वः**" इन तीन व्याहृतियों की उपासना की। इस उपासना रूपी तप से उन्होंने

पृथ्वी में अग्नि देवता को, अन्तरिक्ष में वायु देवता को और स्वर्ग में आदित्य देवता को सार देखा। पुनः तप देवताविषयक संयम करने से अग्नि में ऋग्वेद को, वायु में यजुर्वेद को और आदित्य में सामवेद को सार देखा। फिर पुनः तप वेदं विषयक संयम करने से ऋग्वेद में भूः को, यजुर्वेद में भुवः को और सामवेद में स्वः व्याहृति को सार तत्व देखा। अतः ये महाव्याहृतियां–लोक, देव और वेद में सार तत्व वस्तु है।

"भूः का अर्थ सत, भुवः का अर्थ चित् और स्वः का अर्थ आनन्द है।"

भूरिति सन्मात्रमुच्यते। भुव इति सर्व भावयति। प्रकाशयतीति व्युत्पत्त्या चिद्रूपमुच्यते। सुवियते इति व्युत्पत्त्या स्वरिति सुष्ठु सर्वैर्वियमाण सुख स्वरूप मुच्यते। इति शंकर भाष्यम्।

"महः" सर्वातिशय महत्तर का नाम है। "जनः" सर्व के कारण का नाम है। "तपः" सर्व तेजोरूप परतेज का नाम है और "सत्य" सर्व वाधरहित को कहते हैं।

"**ॐ भूर्भुवः स्वः**" यह सावित्री मंत्र है। इस के लिये मनु महाराज कहते हैं–

ओंकार पूर्विकास्तिस्त्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥
योऽधीतेऽहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायु भूतः स्वमूर्तिमान॥

(मनु-२/७१/८२)

इस सावित्री के तीन पाद हैं-

प्रथम पाद- भूः-तत्सवितुर्वरेण्यम। अर्थात भूलोक उस सविता देवता का वरेण्यम है। महिमा है।

द्वितीय पाद- भुवः-भर्गोदेवस्य धीमहि। अर्थात तेजोमय आप (अन्तरिक्ष लोक) उस सविता देवता के तेज का हम ध्यान करते हैं।

तृतीय पाद- स्वः-धियो यो न प्रचोदयात्। अर्थात स्वर्लोक जो हमारी बुद्धियों को प्रेरित करे।

जो सावित्री को इस प्रकार जानते हैं-वे पुनः मृत्यु को प्राप्त नहीं होते-वे अमरत्व को प्राप्त करते हैं अर्थात् मृत्यु को जीत जाते हैं।

"**ॐ भूर्भुवास्वः**" पूर्वक सावित्री मंत्र का जप ब्रह्म प्राप्ति का द्वार है। जो अधिकारी प्रतिदिन सावित्री का नियम से तीन वर्ष पर्यन्त जप करता है और ध्यान करता है वह ब्रह्म को प्राप्त होता है-**यह अनुभूत**

योग है। वह वायु की तरह कामचारी होता है एवं ब्रह्मस्वरूप को ही प्राप्त होता है।

"**यत्किंचित् मनुरवदत्तदभेषजम्**"–यह श्रुति है अतः मनु का कथन अन्यथा नहीं हो सकता।

"तत्सवितुः"

"**तत्सवितुः**" यहाँ "तत्" पद ब्रह्म का बोधक है।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

यों गीता में "तत्" पद से ब्रह्म का ही निर्देश किया गया है।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञ तपः क्रियाः।
दान क्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः॥

अर्थात यज्ञ दान तपादि के फल की अभिसन्धि को न करके "तत्" पदार्थ परमात्मा को लक्ष करके मुमुक्षु गण कर्म करते हैं। अतएव गीता भी "तत्" पद से परब्रह्म ही का वर्णन करती है।

तच्छब्देन प्रत्यग्भूतं स्वतः सिद्धं परं ब्रह्मोच्यत
–इति शंकर भाष्यम्।

"**सवितु**" पद भी परमेश्वर का बोधक है।

सवितुरिति सृष्टि स्थिति लयम लक्षणकस्य सर्व प्रपंचस्य समस्त द्वैत विभ्रस्याधिष्ठानं लक्ष्यत

इति शकंर भाष्यम्।

सवितुः सर्वन्तर्यामितया प्रेरकस्य
जगत्स्त्रष्टुः परमेश्वरस्येति —सायण भाष्य

"वरेणयम"

वरेण्यम पद भी सर्वश्रेष्ठ का बोधक है–
परमेश्वरस्यात्मभूतं वरेण्यम सर्वैरूपास्यतया ज्ञेयतया च सम्भजनीयम् (सायण भाष्य)

वरेण्यमिति सर्ववरणीयं निरतिशयानन्द रूपम्।

(श्री शंकर भाष्य)

"सवितुर्वरेण्यम" यहाँ पर षष्टी विभक्ति का अर्थ "राहोः शिरः" की तरह अभेद है।

"भर्गः"

भर्गः पद भी अन्तर्यामी परमज्योति का बोधक है–
अविद्यातत्कार्य योर्भर्जनाद्भर्गः।

(सायण भाष्य)

भर्ग इत्यविद्यादि दोष भर्जनात्मक ज्ञानैक

विषयत्वम्।

(श्री शंकर भाष्य)

"देवस्य"

एको देवः सर्व भूतेषु गूढ़
सर्व व्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च॥

यह **"देवस्य"** श्रुति प्रतिपाद्य सर्व साक्षी चेता केवल निर्गुण ब्रह्म आत्मा का ग्रहण है।

"धीमहि"

"धीमहि" पद से "आत्मेत्येवोपासीत" इत्यादि श्रुत्येर्थ के अनुष्ठान का सूचन है अर्थात् मैं देह नहीं आत्मा हूँ, यह आत्मा ब्रह्म है इस प्रकार की सोऽहम् अखण्ड उपासना ध्यान ही परम परा उपासना आत्मानुष्ठान है।

(दोहा)

देह नहीं मैं आत्मा, अहं ब्रह्म असि ध्यान।
सोऽहम् साखी केवली, सिद्धनाथ निर्वाण॥

"धीयो यो नः"

धियो यो नः से अन्तर्यामी पर ब्रह्म का प्रत्यग् आत्मा से अभेद सूचना सूचित होती है–**अयं आत्मा ब्रह्म।**

"प्रचोदयात्"

'**प्रचोदयात्**' पद से "अन्तर्यामी–ब्राह्मण" प्रतिपाद्य अर्थ की सूचना है। अन्तर्यामी जो घट घट में रमण कर रहा है– **प्रज्ञानन्दम् ब्रह्म।**

॥ गायत्री मंत्र का अर्थ ॥

ॐ का लक्ष–"भूः" = सत्, "भुवः" = चित् "स्वः" = आनंद स्वरूप। "तत्" = तत्वमसि वाक्य घटकतत्पद लक्ष्य। "सवितु" = यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, "**जन्माद्यस्य यतः**" इत्यादि लक्षण लक्षित, जगदुत्पादक, सूर्य के सूर्य। "वरेण्यम" = वरणीय, सर्वश्रेष्ठ। "भर्गः" = स्वज्ञान द्वारा अविद्या एवं तत्कार्य का भर्जक, दाहक। "देवस्य" = स्वयं ज्योतिस्वरूप पर ब्रह्म का। "धीमहि" = हम ध्यान करते हैं।

सवितुर्देवस्येत्यत्र षष्ठय्र्थो राहोः शिरोवदौप चारिकः। (श्री शांकर भाष्य)

वह स्वयं ज्योतिःस्वरूप पर ब्रह्म कौन है?–ऐसी जिज्ञासा होने पर कहा है–"**धियो यो न प्रचोदयात्**"

जो हमारी बुद्धि को शुभ कर्म में प्रवृत्त करे। अर्थात् जो ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त सबकी बुद्धियों का प्रवर्त्तक है।

अविद्यातत्कार्ययोर्भर्जनाद्‌भर्गः स्वयं ज्योतिः पर ब्रह्मात्मकं तेजः धीमहि तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहमिति वयं ध्यायेम्।

(सायण भाष्य)

प्रणवान्ता गायत्री जपादिभिरूपास्या। तत्र शुद्ध गायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्य बोधिका। बुद्धयादिसर्वदृश्य साक्षि लक्षणं यन्मे स्वरूपं तत्सर्वाधिष्ठान भूतं परमानन्दं निरस्तसमस्तानर्थ रूपं स्वप्रकाश-चिदात्मकं ब्रह्मेत्येवं धीमहि ध्यायेम। एवं सह ब्रह्मणः स्व विवर्त जड़ प्रपंचेन रज्जु सर्प न्यायेनापवाद समानाधिकरण रूपमेकत्वम्। सोऽयमिति न्यायेन सर्व साक्षी प्रत्यगात्मनो ब्रह्मणा सह तादात्म्यरूपमेकत्वं भवतीति सर्वात्मक ब्रह्मबोध कोऽयं गायत्री मंत्रः सम्पद्यते।

(श्री शांकर भाष्य)

प्रणवान्त गायत्री जपादि ध्यान द्वारा उपास्य है। यहां शुद्ध गायत्री मंत्र प्रत्यगभिन्न ब्रह्म का बोधक है। सब दृश्य को देखने वाला जो मेरा स्वरूप है यही सब का अधिष्ठान है, परमानन्द स्वरूप है, माया एवं

तत्कार्यात्मक सब प्रपंच और सर्व अनर्थों से रहित है। स्वयं प्रकाश चिदात्मक ब्रह्म है, इस प्रकार हम ध्यान करते हैं और स्वविवर्त जड़-प्रपंच के साथ ब्रह्म का रज्जु-सर्पवत वाध समानाधिकरण रूप अभेद है। चिद्रूप प्रत्यगात्मा के साथ ब्रह्म का मुख्य तादात्म्य रूप अभेद है, इस प्रकार सर्वात्मक ब्रह्म का बोधक यह गायत्री मंत्र सिद्ध होता है और यह गायत्री सिद्धस्वरूप आत्म ब्रह्म है।

॥ गायत्री का शुद्ध स्वरूप ॥

ॐ अनादि ब्रह्म हूँ, मायातीत अनूप।
भूर्भुवः स्वः सत्य हूँ, सत् चित् आनंद रूप॥
तत्त परम परमात्मा तत्वमसि गुरु ज्ञान।
सवितुः वरेण्यम आत्मा, भंजक भर्ग अज्ञान॥
स्वयं ज्योति देवस्य का, धीमहि धारण ध्यान।
धियो यो नः बुद्धि परम, सोऽहम् साखी भाण॥
प्रचोद्यात अन्तर पुरुष, अयं आत्मा ब्रह्म।
प्रज्ञानन्दम् ब्रह्म हूँ, मन बाणी बिन श्रह्म॥
अहं ब्रह्म अस्मि सदा, सिद्धनाथ स्व आप।
गायत्री ग्य आत्मा, त्राण करे त्रय ताप॥





(१) **अकार** = भूः-सत्य-समष्टि व्यष्टि-विराट-विश्व-अविद्या-तमोगुण-स्थूलजगत-चेतन तत्व का स्थूल सबल स्वरूप।

(२) **ऊकार** = भुवः-चित्-समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म-हिरणयगर्भ-तैजस-अविद्या-रजोगुण-मिश्रित

विद्या-सूक्ष्म जगत-चेंतन तत्व का सूक्ष्म सबल स्वरूप।

(३) **मकार** = स्वः-आनन्द-समष्टि व्यष्टि कारण-ईश्वर-प्राज्ञ-विद्या-सतोगुण-कारण जगत-चेतन तत्व का कारण सबल स्वरूप।

(४) **अमात्रा** = उपाधि रहित-परमानंद-परमत्तम तत्व-शुद्ध निर्गुण-मायातीत-विराम-मात्रा रहित-चेतन तत्व का विशुद्ध स्वरूप।

ॐ प्रणव की **अ-उ-म** ये तीन मात्राएं और **भूः, भूवः स्वः** ये तीन व्याहृतियां है। यहाँ अकार = भूः व्यष्टि + समष्टि वैश्वानर-विराट-तमोगुण अविद्या प्रगट प्रत्यक्ष सत्य स्थूल स्वरूप है।

उकार = भुवः-तैजस-हिरण्यगर्भ-रजोगुण-विद्या+अविद्या-चित्-सूक्ष्म स्वरूप है।

मकार = स्वः-प्राज्ञ-ईश्वर-सतोगुण-विद्या-आनन्द कारण स्वरूप है। इनका पाद त्रय से क्रमशः प्रतिपादन है जैसे कि-"**तत्सवितुर्वरेण्यम**"-इस गायत्री के प्रथम पाद से समस्त प्रसूयमान प्रपंच की कर्तृशक्ति के वरणीय प्राज्ञ अभिन्न ईश्वर स्वरूप का प्रतिपादन है और कार्य कारण का अभेद होने से कर्तृशक्ति में समस्त कार्य वर्ग का आरोप और अन्तर्भाव का सूचन

है। "**भर्गो देवस्य धीमहि**" इस द्वितीय पाद से तैजस अभिन्न हिरण्यगर्भ का प्रतिपादन है-तेज वाचक भर्ग पद से तथा ध्यान कर्तृ वाचक "**धीमहि**" पद से उक्त अर्थ का सूचन होता है। "**धियो योनः प्रचोदयात**" इस तृतीय पाद से प्रकृष्ट चोदना क्रिया वाचक "**प्रचोदयात**" पद से प्रकृष्ट क्रिया वाले वैश्वानर अभिन्न विराट का सूचन होता है-क्योंकि विशेष क्रिया स्थूल में ही प्रसिद्ध और प्रत्यक्ष है। प्रणव की चतुर्थ मात्रा का भी गायत्री के चतुर्थ पाद में अन्तर्भाव है। अमात्रा और अर्धमात्रा "**तुरिया चेतन**" ही शुद्ध विराम तत्व परमानन्द गायत्री के चौथे पाद का अर्थ है। इस प्रकार प्रणव तत्व भी पूर्ण स्वरूप गायत्री तत्व में समाविष्ट है अर्थात् अनव्य-व्यतिरेक ब्रह्म तत्व गायत्री में पूर्ण स्वरूप से समाविष्ट प्रत्यक्ष प्रोक्ष है। इसलिए भगवती गायत्री "ग्य" रूपा है।

ॐ प्रणव-इस सगुण निराकार ब्रह्म वसिष्ट चेतन ईश्वर को-"**तत्**" (तनु विस्तारे) विस्तार विषयक इच्छा हुई-"**बहु स्याम**"-"**प्रजायेय**" यहाँ विस्तार वाचक तत् पद की विस्तार विषयक इच्छा में लक्षणा है। फिर "**सवितुः**" (**पूञ, प्राणिगर्भ विमोचने**) परमेश्वर इच्छा करने के पश्चात् जगत को पैदा करता है अर्थात् वह स्वतः स्वयं ही इच्छा से जगत रूप हो

जाता है। वह जीव स्वरूप होकर तदन्तन्तर काल पाकर–"**वरेण्यम**" (**वृञ् वरणे**)–प्रार्थनीय अर्थात् स्वयं अपने को प्रत्यक्ष प्रगट करने के लिए श्रेष्ट ब्रह्मज्ञान को यह जीव प्राप्त करता है फिर ज्ञान के पश्चात् "**भर्गो देवस्य**"–अज्ञान का भर्जन (नाश) होता है–देह नहीं मैं आत्मा हूँ–यह आत्मा वही ब्रह्म है–सो अस्मि "**सोऽहम्**" का परोक्ष अनुभव। इसके बाद–"**धीमहि**" जीवन मुक्ति काल में अप्रयत्न–साध्य स्वयं ही स्वयं प्रकाशक रूपेण प्रसंख्यान ध्यानादि होते हैं। तत्पश्चात् "**धिय**"–आत्म तत्वविषयक चरम साक्षात्कार रूपा बुद्धि प्रतिभिज्ञा "प्रज्ञा" बह्माकार वृत्ति स्थिति प्रज्ञा शुद्धा होती है और इसके बाद अभेद भाव से प्राप्ति की प्राप्ति परमेश्वर प्राप्ति रूपा अपरोक्षानुभूति परमानन्द "भूमा" मोक्ष होता है। वह परमेश्वर कौन है? "**यो न प्रचोदयात**"–जो हमारा सबका अन्तरयामी प्रेरक परमात्मा है–"**प्रज्ञानन्दम् ब्रह्म**"।

यह गायत्री सर्वात्मक है, यही सबकी आत्मा है। गायत्री को "**तत्सवितु**" इत्यादि केवल चतुर्विंशति अक्षरात्मक अथवा हस्त पादादि अवयव युक्त देवता विशेष ही नहीं समझना चाहिये, क्योंकि–

"गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच"

(छा. उ. १२-१)

गायत्री ही ये सब भूत-प्राणी वर्ग है, जो कुछ भी ये स्थावर जंगम प्राणी हैं वे सब गायत्री ही है अत: गायत्री का उपासक भी गायत्री रूप ही है।

मंत्र गुरु देवात्मकत्वेनात्मानं भावयन
यथा शक्ति गायत्री जप समर्थः।

(गायत्री पु.)

इसलिए उपासक को चाहिये कि अभेदभाव से गायत्री का चिन्तन करें।

तद्यो यो देवानां प्रत्यबुद्धयत स एवं तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वाम देवः प्रतिपदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्चेति तदिदमप्येतर्हिय एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति सं इदं सर्व भवति तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशते आत्मा ह्येशां स भवति। "अयमात्मा ब्रह्म"। "तत्वमसि"। प्रज्ञानं ब्रह्म।

जो मनुष्य महर्षि वामदेव के समान अभेद उपासना करता है वह देवत्व पद को लांघ कर ब्रह्म स्वरूप आत्मज्ञ ज्ञानी मुक्त हो जाता है। वह गायत्री स्वरूप "**सवितु**" जो सृष्टि का प्राणात्मा है सो अस्मि-मैं हूँ ऐसा जानने वाला गायत्री का ऋषि होता है।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह। तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥

(ई. उ. १६)

तू जगत्पोषक संसार का नियामक-निरीक्षक और प्रवर्तन कर्त्ता तथा पालन कर्ता है। तेरी रश्मियों के माध्यम से यह तेजस्वी परम कल्याणमय स्वरूप जो मैं देख रहा हूँ वह परात्पर पुरुष (**समष्टि को पूर्ण किये हुए शरीर रूपी पुर में शयन करने के कारण पुरुष**) सो मैं हूँ-सोऽहम्।

वेदों से जाना हुआ ब्रह्म इदं रूपा अहं रूपा सर्व आत्म रूपा परिपूर्ण अखण्ड साम ग्ये जो आत्मा है सो अहं ब्रह्म अस्मि-**अयं आत्मा ब्रह्म** प्रज्ञानंब्रह्म-"**सोऽहम**"।

यह गायत्री-शिर भी अद्वितीय परब्रह्म का बोधक है।

आप इत्याप्नोतीति व्युत्पत्तया व्यापित्व मुच्यते। ज्योतिरिति प्रकाश रूपत्वम्। रस इति सर्वातिशयत्वम्। अमृतमिति मरणादिसंसार निर्मुक्तत्वम्। सर्व व्यापि-सर्वप्रकाशक सर्वोत्कृष्ट नित्य मुक्तमात्म रूपं सच्चिदानन्दात्मकं यदोङ्कार

वाच्यं ब्रह्म तदहमस्मीति।

(श्री शांकर भाष्य)

इति २ जगत जो व्यापत है वह सब गायत्री में समाहित है और गायत्री अपने शिरः प्रणव ॐ में समाहित है सो ओंकार सर्व प्राणी मात्र का प्रकाश स्वरूप आत्मा है सो ही ज्योतिर्मया आत्मा तेरी तू ही है।

इसलिए हे मुमुक्षु! पूर्ण निश्चय से प्रोक्षानुभूति में स्थित हो जा कि मरण रूप संसार से मुक्त करने हारा अमृत सर्व व्यापि सर्व का प्रकाशक सर्वोत्कृष्ट नित्य मुक्त आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप ओंकार वाच्य ब्रह्म मैं हूँ। इससे तू जीवित ही अमृत ब्रह्म को प्राप्त होगा।

देवो भूत्वा देवान्यजेत,–अथयोऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहम स्मीति न स वेद तथा पशुखैं स देवनाम्। (श्रुति)

हे मुमुक्षु! जो अपने आत्म देव से अन्य देव की उपासना करता है वह पशु के समान उसी देवता का वाहन बन जाता है और मोक्ष से वंचित रह जाता है इसलिए भगवती गायत्री मेरी आत्मा ही है इस प्रकार उपासना कर–वरना तू भी हंस योनि को प्राप्त होवेगा।

वासुदेवः सवमिति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। (गीता)

अन्य नहीं। इस प्रकार स्वयं "मां" आत्म स्वरूप की उपासना करें। ये सब श्रुति–स्मृति वाक्य अभेद भावना में प्रमाण है और भेद भावना व भेद उपासना में भय अर्थात् काल व माया का अधिकार है।

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्।

यह आत्मा ही शाश्वत सुख और परमानन्द का सागर है। जिस प्रकार मनुष्य आपना मुख देख कर प्रसन्न और मगन होता है वैसे ही यह आत्मा अपने आनन्द के साम की श्रुति कर परमानन्द मगन रहता है। साम अर्थात् स्वतः ग्ये रूपा गान जो प्राणी मात्र के हृदय में स्वतः ही स्फुरण रूपा अखण्ड होता रहता– स्वतः ही प्राणों में रमण करता रहता है और गान करते हुए प्राणी मात्र का त्राण करता है। वह गान "ग्ये" गायत्री है। जो प्राणी इसका गान कर श्रुति करता है अर्थात् मन वाणी के बिना स्वतः सिद्ध गान की श्रुति करता है याने स्वयं ही गान करता है और स्वयं ही श्रुति करता है उसका तीनों पापों से त्राण हो जाता है।

सा ह्येषा गयांस्तत्रे प्राणा वै गयांस्तत्प्राणांस्त्रे तद्यदगयांस्त्रे तस्माद् गायत्री नामे। यस्मा अन्त्राह तस्य प्राणांस्त्रायते (वृ. उ.)

वाग वै गायत्री वाग्वा इदं सर्व भूतं गायति च त्रायते च (छा. उ.)

गानात्त्राणाच्च गायत्र्या गायत्रीत्वम्।

(श्री शंकराचार्य)

गायन्तं त्रायते इति गायत्री–

गायतस्त्रायसे देवी तद् गायत्रीति गद्य से। गयः प्राण इति प्रोक्तस्तस्य त्राणादप्रीति गीयते तत्वमनयापरमत्तत्व आत्मा में जिसका मन गान करता है वह गान करते करते मन गमन कर जाता अर्थात् "ग्ये" हो जाता है वह गायत्री है। इसलिए हे मुमुक्षु! तू "ग्ये" रूपा ब्रह्म परम तत्व का हृदय में गान कर–यह गायत्री है।

हे मुमुक्षु! ध्यान की उपयोगिता से श्रुति छांदोग्य में इस गायत्री के चार पाद और छः प्रकार कहे हैं–

सैषा चतुष्पदा षड्विध गायत्री। (छा. उ.)

सर्वात्मक गायत्री-तत्व के निश्चय के लिए परोक्ष-अपरोक्ष स्वरूप सर्वात्मक गायत्री के ४ पाद (छः अक्षर के हिसाब से) और ६ प्रकार (वाग, भूत, पृथ्वी, शरीर, हृदय और प्राण) की उपासना कही है।

सर्वात्मक गायत्री ब्रह्म के एक पाद में चतुष्पादादि कल्पना को दिखा कर गायत्री के शुद्ध त्रिपाद स्वरूप को भी छान्दोग्य श्रुति दिखलाती है।

तावानस्य महिमाततो ज्यायांश्च पुरुषः पादोऽस्य सर्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति। "तावान" वागादि प्राण पर्यन्त सर्व प्रपंच "अस्य"

–इस गायत्री ब्रह्म की महिमा-विभूति-विस्तार है। प्रपंच रूप महिमा-विभूति-विस्तार से निर्गुण पुरुष श्रेष्ट है। समस्त भूत इस गायत्री-ब्रह्म के एक पाद हैं अर्थात् एक पाद रूप अंश के विवर्त हैं और अविनाशी पर ब्रह्म त्रिपाद रूप अपने शुद्ध स्वयं ज्योति स्वरूप में अवस्थित है।

वह स्वयं ज्योति स्वरूप पर ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त होने से अन्वय-व्यतिरेंक रूपा शरीर के भीतर भी स्थित है।

यदतः परो दिवोज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदंवाव तद् यदिदास्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योति।

यह श्रुति भी विश्व के अध, ऊर्ध्व, सर्वतः पृष्ठों में स्थित चैतन्य ज्योति रूप गायत्री-ब्रह्म की शरीर के भीतर स्थिति बतला रही है। इस मंत्र में स्थित "यदतः" इस यत्-पद से प्रकृत गायत्री-ब्रह्म का परामर्श है।

इसलिए शरीरस्थ स्वयं ज्योतिस्वरूप गायत्रि ब्रह्म उपास्य ध्येय है। वह शरीर में कहाँ अवस्थित है? इस

पर श्रुति कह रही है–

यद्वै तद्ब्रह्मेतीदं वाव तद्योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्त देतत्पूर्णम प्रवर्तिं पूर्णाम प्रवर्तिनीं श्रियं लभते य एवं वेद।

यह जो शुद्ध त्रिपाद स्वयं ज्योति गायत्री-ब्रह्म है वह शरीर से बाहर जो यह आकाश है–वही है। जो बाहर का आकाश है वह जो शरीर के भीतर आकाश है–वही है। और जो शरीर के भीतर आकाश है यह जो हृदय के भीतर आकाश है–वही है।

यह चिदाकाश पूर्ण–देशकाल वस्तु नाम रूप परिच्छेद शून्य है, निष्क्रिय और अपरिणामी है। जो इस हृदयस्थ हृदयगत चिद् आकाश रूप "**शुद्ध गायत्री ब्रह्म**" को जानता है, वह पूर्ण और अपरिणामी मोक्ष को प्राप्त होता है।

इसलिए हे मुमुक्षु! तू इस गायत्री ब्रह्म का हृदय में ध्यान कर, यही ध्येय और "ग्ये" है।

सैषा गायत्र्यै तस्मिमस्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठितातद्वैतत्सत्ये प्रतिष्ठितम्।

(वृ. उ. ५-१४-४)

यह लोकत्रयी, वेदत्रयी, सर्वप्राण स्वरूपा त्रिपदा गायत्री इस चतुर्थ तुरीय पद में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार तुरीय चैतन्य रूप यह गायत्री प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्वयं ज्योतिः प्रत्यगात्म रूप में स्थित है। हे मुमुक्षु! यह गायत्री हृदयस्थ तेरी आत्मा है और वह आत्मा तू ही तेरा अपने आप है इसलिए तू अपने हृदय में अपनी आत्मा स्वरूप इस गायत्री का ध्यान कर।

हृदय कमल मध्ये दीप वद्वेद सारं,
प्रणवमयमतर्क्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्।
हरि गुरु शिव योगं सर्व भूतस्थमेकं,
सकृदपि मनसावें ध्यायते यः स मुक्ता॥

(गायत्री पुरुश्चरण पद्धति)

यह जो वाम भाग में हृदय रूपी अष्ट कमल है जिसमें संसार का अधिष्ठान आत्मरूपी दीपक अखण्ड रूप से दिप्तमान है सो प्रणव से ही गम्य है। तू हृदयस्फुरण प्रणव के माध्यम से इस आत्म ज्योति का ध्यान कर-वह ज्योति स्वरूप दीपवत आत्मा-सो अस्मि-मैं हूँ। यह आत्म ज्योति ही हरि, हर, गुरु, ब्रह्म

स्वरूप है व हरि हर ब्रह्मा शिव गुरु इसी में योगस्त हैं। जो ध्यान के माध्यम से इस में मन को विलीन कर देता है वह मुक्त है।

अथवा–

आत्मन अकाशो भवति, आकाशाद्वायुर्भवति, वायोरग्निर्भवति, अग्नेरोंकारो भवति, ॐ कारात् व्याहृतिर्भवति, व्याहृतियो गायत्री भवति, गायत्र्याः सावित्री भवति, सावित्र्याः सरस्वती भवति, सरस्वत्या वेदा भवति, वेदेभ्यो लोकाः।

(गायत्री हृदय)

यह विराट-विश्व लोकों की उत्पत्ति के क्रम को ध्याता पुरुष को चाहिये कि वह विपरीत क्रम से लोकादि का लय देदिप्यमान सवितु स्वयं ज्योति स्वरूप अपनी आत्मा में करे। सम्पूर्ण लोकों को वेदों में लय अन्तर्भाव चिन्तन करे, वेदों का सरस्वती में, सरस्वती का सावित्री में, सावित्री का गायत्री में, गायत्री का व्याहृतियों में, व्याहृतियों का ओंकार में, ओंकार का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में और आकाश का लय अपने हृदयस्थ आकाश में और हृदयस्थ आकाश का लय तेज पुंज कोटि सवितु रूपा ब्रह्म स्वरूप अपने आत्मा में समझे–

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।

(ई. उ. -१६)

यह जो अत्यन्त कल्याणमय तेज पुंज दिव्य परम सुन्दर स्वरूप आदित्य आत्म पुरुष हैं–वह मैं ही हूँ "सोऽहम्"। इस प्रकार अपने स्वयं ज्योति स्वरूप आत्मा से अतिरिक्त अन्य का चिन्तन न करे, आत्म स्वरूप सोऽहम् का अखण्ड ध्यान बनाये रखें।

सर्वमस्मीत्युपासीत तदव्रतं तदव्रतं।

(छा. उ. २-२१-४)

"सर्वम्ऽस्मि।" सर्वम्ऽस्मि!! सर्वम्ऽस्मि!!!

इस प्रकार उपासना करें–"मैं सब कुछ हूँ" इस प्रकार की उपासना करे, यही ज्ञानी उपासक के लिए नियम है और तद्व्रतं की द्विरुक्ति उपासक की उपास्यता की समाप्ति के लिए है अर्थात् "ग्ये" रूपा अपरोक्षानुभूति "भूमा" में स्थिति है। जैसे लोक के राजा की प्राप्ति के लिए राजा के द्वारपालों को वश में करना राजा की प्राप्ति में निमित्त है वैसे ही लोकाधिपति सद् ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्राण व्यान, अपान, समान, उदान–ये पंच हर्दि चैतन्य ज्योति गायत्री ब्रह्म रूप स्वर्ग लोक के द्वारपाल हैं। ये द्वारापाल वश में हुए हृदय में स्थित गायत्री ब्रह्म की प्राप्ति में निमित्त होते हैं। उपासक स्वर्ग लोक (प्रत्यग

ज्योति रूप-गायत्री ब्रह्म) को प्राप्त होता है और उस के कुल में वीर पुरुष (इन्द्रियजित ब्रह्मग्य) पुत्र या शिष्य रूप में पैदा होते हैं।

ते वा एते पंच ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पंच ब्रह्म पुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान् वेदास्य कुले जायते प्रतिपद्यते स्वर्ग लोकम्।

(छा. उ. ३-१३-६)

इसलिए हे उपासक! स्वयं ज्योतिः स्वरूप हृदयगत चिदाकाश रूप इस गायत्री ब्रह्म की उपासना के अंगरूप द्वारपालों की उपासना कर।

इस गायत्री-ब्रह्म-भवन रूप हृदय के पाँच सुषि (छिद्र) हैं। पाँच सुषियों के सम्बन्ध के कारण हृदयस्थ ब्रह्म के पाँच पुरुष हैं अर्थात् द्वारस्थ राज पुरुषों के समान हृदयस्थ स्वर्ग लोक के द्वारपाल हैं। चक्षु, श्रोत, वाक, मन और प्राण है। इनके द्वारा बाहर की ओर प्रवृत्त हुए इन्हीं के द्वारा हृदयस्थ ब्रह्म की प्राप्ति के द्वार रुके हुए हैं। यह बात प्रत्यक्ष है कि अजितेन्द्रियता के कारण बाह्य विषयों की आसक्ति रूप अमृत से व्याप्त रहने के कारण मन हृदयस्थ ब्रह्म में स्थित नहीं होता अतः यह ठीक है कि ये पांच ब्रह्म पुरुष स्वर्ग लोक के द्वारपाल हैं। इसलिए जो इनको

उपासना द्वारा अपने आधीन कर लेता है वह इनसे निवारित न होता हुआ राजा को प्राप्त होने के समान स्वर्ग लोक यानी हृदय स्थित ब्रह्म को प्राप्त होता है।

हृदयस्थ ब्रह्माकाश भवन के पांच द्वारा हैं जिनमें से ब्रह्म ज्योति बाहिर निकल रही है—इसी पूर्वी द्वार का द्वारापाल "प्राण" है, यही "चक्षु" है और यही "आदित्य" है। इस प्राण का जो तेज और दीप्ताग्नि रूप से चिन्तन करता है वही तेजस्वी और दैदिप्यमान हो जाता है।

इस दक्षिण द्वारा का द्वारपाल "व्यान" है, यही श्रोत्र है और यही चन्द्रमा है। इस "व्यान" का जो श्री और यश रूप से चिन्तन करता है वह श्रीमान और यशस्वी होता है।

इस पश्चिम द्वार का द्वारपाल "अपान" है, यही "वाग" है और यही "अग्नि" है। इस "अपान" का जो ब्रह्मचर्य रूप से चिन्तन करता है वह ब्रह्मवर्चस्वी और ज्योति स्वरूप हो जाता है।

इस उत्तरी द्वार का द्वारपाल "समान" है, यही मन है और यही पर्जन्य है। इस "समान" का जो कीर्ति और व्यष्टि रूप से चिन्तन करता है वह कीर्तिमान और व्यष्टि रूप अधिपति हो जाता है।

इस ऊर्ध्वद्वार का द्वारापाल "उदान" है, यही वायु

है और यही आकाश है। इस उदान का जो ओज और महःरूप समष्टि चिन्तन करता है वह ओजस्वी और महान् समष्टि रूप हो जाता है।

इस प्रकार इस गायत्री का श्रवण विचार और चिन्तन ब्रह्मस्वरूप ही सिद्ध होता है और परोक्षापरोक्ष रूप अनुभूत है जिसका श्रुति और आप्त प्रमाण हैं।

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि गायत्री पद से तो **"तत्सवितुः"** इत्यादि चतुर्विंशति अक्षर सन्निवेशरूप गायत्री छन्द का ही कथन होता है, ब्रह्म कथन नहीं बन सकता? इस पर यह उत्तर है कि–

छन्दोऽभिधानान्नेति चन्ने तथा।
चेतोर्पणनिगदात्तथा हि दर्शनम्॥

(ब्रह्मसूत्र-१-१-२५)

गायत्री पद से छन्द मात्र का कथन नहीं बन सकता, किन्तु गायत्री मंत्र–जपादि द्वारा गायत्री अनुगत ब्रह्म में चित्त के अर्पण की विवक्षा है। जैसे गायत्री मंत्र द्वारा ब्रह्म में चित्तार्पण विवक्षित है वैसे ही अन्यत्र भी वेदों में विकार द्वारा ब्रह्म दर्शन विवक्षित है। वेद रहस्यभूत मधु विद्या को जो जानता है उसको जन्म और लय रहित ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति होती है अतः वेद होने के कारण गायत्री में ब्रह्म शब्द का प्रयोग

ठीक है अर्थात् गायत्री को ब्रह्म कहना ठीक है। गायत्री शब्द ब्रह्म लक्षक है-लक्षण से ब्रह्मरूप अर्थ का प्रतिपादक है।

गायत्री के चतुष्पाद और ब्रह्म के चतुष्पाद, गुण के सादृश्य से चित्त ब्रह्म में समर्पित किया जाता है जिस से वह **"चेतोर्पण"** अर्थात् गायत्री शब्द है इससे ब्रह्म का ही अभिधान है तथा संवर्ग विद्या (छा. उ. ४-३) में देवताओं में अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल "वायु" में लीन होते हैं और शरीर में वाणी, नेत्र, कर्ण और मन "प्राण" में लीन होते हैं। ये पाँच अधिदैविक और पाँच आध्यात्मिक मिलकर दस "कृत" वस्तुतः कृत-४, त्रेता-३, द्वापर-२, कलि-१ ये चार संख्या से युक्त दस संख्या विराट रूपा व दस प्राण वायुरूपा समानता से कृतत्व का ध्यान करना चाहिये। इस विराट के ध्यान से उपासक विराट रूपा ब्रह्म है यह गायत्री रूपा ब्रह्म अनुभूत है। लक्षणा पक्ष में- **"गायत्री वा इदं सर्वम्"** श्रुति में पठित गायत्री पद अपने वाच्य अर्थ का त्याग किये बिना स्वोपाधिक ब्रह्म का बोध करता है तथा गौण पक्ष में **"सैषा चतुष्पदा"** श्रुति में गायत्री चतुष्पात कही गई है और **"पादोऽस्य सर्व भूतानि त्रिपादस्यामृतम्"** में ब्रह्म चतुष्पात कहा गया है। इस चतुष्पात्त्वरूप सादृश्य से

"गायत्री" पद अपने अर्थ का त्याग कर श्रुति में उक्त सर्वात्मकता की सिद्धि के लिए ब्रह्म का बोधक है। अलंकारिक सादृश्य सम्बन्ध से गोणी लक्षणा और सादृश्यता के अतिरिक्त सम्बन्ध से "ग्ये" शुद्ध लक्षणा मानते हैं अर्थात् दोनों केवल सर्वात्मकत्व रूप हेतु से "ग्ये" लक्षार्थ लक्ष है।

भूतादि पाद व्यपदेशोपपत्तेश्चैवम्।

(ब्रह्मसूत्र १-१-२६)

"गायत्री वा" इस श्रुति में भूत, पृथ्वी, शरीर और हृदय पाद कहे गये हैं। यह कथन ब्रह्म में ही उपपन्न हो सकता है। केवल छन्दो रूप गायत्री के भूत, पृथ्वी आदि पाद नहीं हो सकते। इससे यह स्पष्ट है कि गायत्री शब्द गायत्री में अनुगत ब्रह्म का ही बोधक है इसलिए ब्रह्म बोधक गायत्री भगवती ध्येय ज्ञेय श्रुति रूपा है।

नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति। (वृ. उ. ५-१४-७)

हे भगवती! गायत्री ज्ञेय रूपा ब्राह्मी तुम निर्गुण स्वरूप पदादि अवयवों से रहित हो। मन वाणी आदि से अगोचर हो। अज्ञ जनों को तुम नहीं दीखती हो।

तुम रज तम आदि से परे हो। तुम देखने योग्य, जानने योग्य और श्रवण करने योग्य तुरीय पद रूपा केवल्य भूमा हो, तुम को मेरा नमश्कार है।

"**असौ**" यह स्वयं ज्योति तुरीय "अद:" ब्रह्म मुझ को प्राप्त हो-"अ" ब्रह्म "सौ" "वह अद:" अहं आत्मा है–**अहं आत्मा ब्रह्म। प्रज्ञानं ब्रह्म!!**

इस प्रकार जो स्व आत्म रूपा अभेद ब्रह्म स्वरूप गायत्री की उपासना तुरीय पद से करता है वह सर्वान्तरात्मा सूर्य होकर ईश्वर स्वरूप से सबके ऊपर तपता है और वह जीवन मुक्ता सब को श्री, यश और मोक्ष का दाता होता है।

॥ भूत शुद्धि ॥

भूत शुद्धि विहीनेन जप पूजादिकं कृतम्।
सर्व निरर्थकं विद्धि विपरीत फलार्थ दम्॥

(वसिष्ठ संहिता)

गायत्री-पुरश्चरणगत इस वसिष्ठ संहिता के वचन से भूत शुद्धि आवश्यक है, अतः संक्षेप से भूत शुद्धि देहाध्यास गलित हेतु सेतुबन्ध प्रक्षालन है। अपने स्वरूप की सिद्ध तटस्थ लक्षणा हेतु प्रसंख्यान (ज्ञानाभ्यास विचार चिन्तन) भूत शुद्धि-

प्रथम अपने शरीर को पंच भूतात्मक चिन्तन करे, अर्थात् कार्य कारण का अभेद होने से अपने शरीर में अस्थि, मांसादि जो कठिन पार्थिव भाग है उसको पृथ्वी रूप चिन्तन करे एवं शुक्र शोणित आदि द्रव जलीय भाग को जल रूप से चिन्तन करें। भूख-प्यास उष्णत्व आदि तैजस भाग को तेज रूप से और श्वास प्रश्वास आदि वायवीय भाग को वायु रूप से और शरीरगत छिद्र आदि आकाश के भाग को आकाश रूप से चिन्तन करे। पुनः अभेद प्रसंख्यान पृथ्वी का जल में लय चिन्तन करे, जल का तेज में, तेज का वायु में, वायु का आकाश में और आकाश का माया में लय

चिन्तन करें। तथा पुनः सूक्ष्म प्रसंख्यान अभेद ध्यानाधिकरण देह देवालय में आन्तर मुख वृत्ति अन्नमय कोश को पार कर प्राणमय कोश में, प्राणमय कोश को पार कर मनोमय कोश में, मनोमय कोश को पार कर विज्ञानमय कोश में, विज्ञानमय कोश को पार कर आनन्दमय में लय चिन्तन करे। तटस्थ प्रज्ञा ब्रह्मा कार वृत्ति को तप्तलोह पिण्ड प्रक्षिप्त जल बिन्दु के लय की तरह शुद्ध माया आनन्द का नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सिद्ध-स्वभाव स्वयं प्रकाश चैतन्य स्वरूप ब्रह्म में चिन्तन का लय करे-अथ अहं ब्रह्मास्मि स्वयं ज्योति परमानन्द स्वरूप "**अहं ब्रह्मास्मि**" चिर काल पर्यन्त अखण्डता में स्थित रहे। पुनः पुनः "अहं ब्रह्मास्मि" भाव से महाभाव में स्थित रहे-"**सोऽहम्**"।

निराधारे निराकारे निर्विकल्पे निरंजने।
सर्वभूत लयं दृष्टा भूत शुद्धि प्रजायते॥

"**सोऽहम्**" इस मंत्र के द्वारा अपने हृदय कमल पर दिव्य स्वरूप आत्मा को विराजमान करें। इसके बाद जिस कुण्डलिनी से जीव ब्रह्म में संयोजित हुआ है उस कुण्डलिनी को तथा परमात्मा के संसर्ग से सुधामय जीव को हृदय रूपी कमल नाल अधोमुखी जो अखण्ड स्फुरणा रूप से प्राण संयुक्त होकर अपनी

पुच्छ अपने ही मुख में दबा कर सुप्तावस्था से सोई पड़ी है, उस के मुख पर "**सोऽहम्**", "**सोऽहम्**" से टक्कर मारे, जिससे प्राणशक्ति स्वरूपा भगवती कुण्डलिनी अपना मुख खोल दे, तदन्तर जीव उस में प्रवेश करे।

इस प्रकार महाभगवती कुण्डलिनी के जाग्रत होने से हृदय में प्रचण्ड ज्ञान अग्नि प्रज्वलित होवेगी जिससे अनादि जन्मों से संचित किये हुए पाप समुदाय का कृष्ण वर्ण एक पुरुष जो कि बायीं कुक्षि में बैठा रहता है वह सूख करके भस्म हो जावेगा। फिर वह ज्ञानाग्नि कुण्डलिनी मूलाधार से ऊपर की ओर गमन करती हुई सर्व षट-कमलों को स्फोट रूपेण भेदन करती हुई उनके बीजाक्षरों को प्रगट करती हुई सहस्त्रदल कमल में विराजमान होकर सर्वांगीण आलोक को प्राप्त होवेगी।

॥ गायत्री-पुरश्चरण ॥

"पुरश्चरण" अर्थात् चरण के स्वरूप का साक्षात्कार। गायत्री के चरण द्वारा आत्म रूपी पुरुष का साक्षात्कार ही पुरश्चरण विधि है।

गायत्री छन्द में अक्षरों की जितनी संख्या है, उतने लाख अर्थात् २४ लाख जप करने से एक पुरश्चरण सम्पन्न होता है। विश्वामित्र का मत है कि ३२ लाख जप होने चाहिये।

जप-मंत्र की पुनरावृति बार बार होने को जप क्रिया कहा है। जप चार प्रकार से होता है:-

(१) बैखरी वाणी से (२) मध्यमा वाणी से
(३) पश्यन्ति वाणी से (४) परा वाणी से

मंत्र, जप, संध्या व अनुष्ठान में एक रहस्य यह है कि जब तक मंत्र सिद्ध नहीं होता तब तक मंत्र चलता नहीं, जप होता नहीं, संध्या बनती नहीं और अनुष्ठान पूर्ण फलीभूत होता नहीं। इसलिए प्रथम तो मंत्र सिद्ध होने का उपाय विदित होना चाहिये। यह गोपनीय युक्ति है फिर भी सद्गुरु आज्ञा से जीव कल्याणार्थ श्रुति है।

युक्ति यह है कि मंत्र सिद्ध करने के लिये "मंत्र

को खुद ही बोले और खुद ही सुने''

''मंत्र के अक्षर अक्षर उच्चारण को एकाग्रता से श्रुति करें'' ''स्व बोले स्व श्रुति करे''।

इस युक्ति से मंत्र में मन तर हो जावेगा यानि लय हो जावेगा। तब मंत्र सिद्ध होकर चेतन्य स्वरूपता से अपने मूल स्वरूप को प्रगट कर कार्यान्वित होता।

बैखरी से जप करने का फल शतगुणा, मध्यमा से सहस्त्र गुणा, पश्यन्ति से सहस्त्राति सहस्त्र अर्थात् दस लाख गुणा और परा से सहस्त्र कोटि गुणा फल प्राप्त होता है। इसलिए ज्ञानियों की संध्या पश्यंति से और पुरश्चरण और अनुष्ठान परा से शीघ्र तत्काल ही हो जाता है क्योंकि ज्ञानी इस युक्ति भेद रहस्य के विदविग्य होते हैं।

पुरश्चरण अनुष्ठान के लिये वेद माता गायत्री की पहचान होनी चाहिये इसके लिये याज्ञवल्क्य ऋषि ब्रह्मा जी के सामने विनम्र भाव से बोले-''हे ब्रह्मा जी! गायत्री का गोत्र क्या है, अक्षर कितने हैं, शिर कितने हैं? कुक्षि कितनी है?'' ब्रह्मा जी बोले-''हे श्रेष्ट ऋषि याज्ञवल्क्य! गायत्री का सांख्यायन गोत्र है, बत्तीस अक्षर हैं। चार पाद है। अन्त का एक पाद न गिनने से तीन पाद वाली गायत्री कही जाती है, चौबीस अक्षर होते हैं। ऋग्वेद गायत्री का प्रथम पाद

है, यजुर्वेद दूसरा पाद है, सामवेद तीसरा पाद है, अथर्वणवेद चौथा पाद है। पूर्व दिशा प्रथम कुक्षि है, दक्षिण दिशा दूसरी कुक्षि है, पश्चिम दिशा तीसरी कुक्षि है, उत्तर दिशा चौथी कुक्षि है, ऊर्ध्व दिशा पंचम कुक्षि है, अधः दिशा छठी कुक्षि है, अन्तरिक्ष दिशा सप्तम कुक्षि है और अवान्तर दिशा अष्टम कुक्षि है। व्याकरण गायत्री का प्रथम शिर है, शिक्षा द्वितीय शिर है, कल्प तृतीय शिर है, निरुक्त चौथा शिर है, ज्योतिष पंचम् शिर है, पुराण षष्टम् शिर है, उपनिषद सप्तम् शिर है। पूर्वासन्ध्या गायत्री, मध्यमा सावित्री और पश्चिमा सरस्वती कही जाती है। गायत्री बाला कुमारी रक्त वर्णा है व वस्त्रादि भी सम्पूर्ण रक्त ही हैं।''

सावित्री श्वेत वर्णा है और सरस्वती कृष्ण वर्णा है। एक गायत्री–चिति शक्ति ही अनेक रूप को धारण करती है और विशुद्ध निरुपा आत्मा है। गायत्री का विष्णु हृदय है, रुद्र शिखा है, ब्रह्मा कवच है तथा नारायणोपनिषद में ब्रह्मा को गायत्री का शिर कहा है। इस प्रकार गायत्री वेदमाता सर्वात्मक रूपा ब्रह्म शक्ति ब्रह्म रूपा है। गायत्री–पुरश्चरण एक उत्तम तप है। तप का तात्पर्य शरीर को सुखा डालना नहीं वरन् ब्रह्माग्नि से अग्निवित होना है इसलिए सात्विक आहार–व्यवहार में युक्त होकर अन्तरमुख द्वारा पुरश्चरण

करना चाहिये। पुरश्चरण काल में रोज़ाना शयन करते समय अष्टांग योग चूर्ण का सेवन अर्थात्:-

१-हर्डे २-बहड़ा ३-आँवला ४-सोंठ
५-सोंफ ६-सनाय ७-आसकन्द ८-अजवायन।

सबका सम भाग बारीक चूर्ण चार मासा का सेवन जल से व गाय के दुग्ध के साथ हमेशा करना चाहिये जिससे स्वास्थ्य उत्तम रहे। भोजन = गाय का दूध, चावल, खिचड़ी, गाय का घृत व दधि नमक मिर्च के बिना ही करना चाहिये।

प्रातः पंच स्नान व सर्वांग कूप जल से स्नान तथा पर्वत शिखर पर, नदी के तट पर, उत्तम कूप पर, बिल्व वृक्ष के नीचे, जलाश्य, गौशाला, देवमन्दिर, पीपल के वृक्ष के नीचे, उद्यान, तुलसीवन, पुण्य क्षेत्र, तीर्थ अथवा गुरु के निकट बैठकर पुरश्चरण करना चाहिये।

काशी, केदार, महाकाल, नासिक और महान क्षेत्र त्र्यम्बक ये पांच भूमण्डल पर सिद्ध स्थान हैं। चन्द्रमा और नक्षत्र अनुकूल हो तब शुक्ल पक्ष में पुरश्चरण प्रारम्भ करना चाहिये।

प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व ही स्नान कर के प्रथम १०८ गायत्री मंत्र की आहुतियों से पीपल की लकड़ियों से प्रज्वलित अग्नि में हवन सामग्री:- १-

गाय का घृत २-तिल ३-यव ४-तंदुल (चावल) ५-विल्वपत्र 6-मधु (शहद) ७-शक्कर देशी ८-तुलसी की लकड़ियां और अष्टगन्धः-छैड छबीला, नागर मूथा, कपूर काचरी, अगर तगर, चन्दन का बूरा, सुगन्धित पुष्प और इत्र के द्वारा हवन करे। फिर सिंहासन या मृगी आसन पर सिद्धासन या पद्मासन द्वारा स्थित होकर प्राणायाम करें।

ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः इस मंत्र से अथवा केवल ओंकार जपते हुए प्राणायाम करना चाहिये।

प्रथम वाम-नासिका पुट से सोलह बार प्रणव जपते हुए बाह्य वायु को खींच कर पूरक करे, पुनः चौसठ प्रणव जप काल तक कुम्भक करे, और बत्तीस प्रणव जप काल में शनैः शनैः वायु का रेचन दायां नासिका पुट अर्थात् सूर्य के द्वारा करे।

अथवा यथाशक्ति वायु को खींच कर पूरक करे, पुनः यथाशक्ति कुम्भक करें पुनः शनैः शनैः रेचन करे। पुनः दक्षिण नासिका सूर्य पुट से पूरक करे और कुम्भक करके वाम नासिका चन्द्र पुट से रेचन करे। एक पूरक, एक कुम्भक, एक रेचक मिल कर एक प्राणायाम होता है। इस प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम नित्य करके जप प्रारम्भ करना चाहिये:-

॥ शतअक्षरा गायत्री ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टि वर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृततात्।

ॐजातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निद हाति वेदः। स नः पर्षदतिदुर्गाणिः विश्वानानेव सिन्धु दुरितात्यग्निः।

यह सौ अक्षर की गायत्री है इस में "**भूर्भुवः स्वः**" तीन व्याहृतियां नहीं गिनी जाती हैं। ॐ केवल एक प्रणव से सम्पन्न है। तत्पश्चात् साम्यक प्रकार से तीनों शापों से मुक्त होने के लिए १. ब्रह्मा शाप २. **विश्वामित्र शाप और ३. वसिष्ठ शाप।**

शाप मोचन मंत्र को पढ़ कर जल छोड़ दें।

मंत्रः-**दिव्य रूपे महादेवि ब्रह्माविष्णु शिवात्मकेऽज- रेऽमरे शापान्मुक्ता त्वं वरदा भव।**

यह शाप-विमोचन सर्वात्मक अजर अमर मुक्त स्वरूप, अद्वितीय ब्रह्म का बोधक है। अथवा

१-ॐ यद ब्रह्मेति ब्रह्म विदो विदुस्तां धीराः सुमनसो व गायत्री त्वं ब्रह्मशापाद् विमुक्ता भव।

२-ॐ अर्क ज्योतिरहं ब्रह्म ब्रह्मज्योतिरहं शिवः।
शिव ज्योतिरहं विष्णुर्विष्णुर्ज्योतिः शिवः परः॥
गायत्री! त्वं वशिष्ठशापाद विमुक्ता भव।
३-ॐ अहोदेवि महादेवी दिव्ये संध्ये सरस्वती।
अजरे अमरे चैव ब्रह्मयोनि नमोऽस्तुते॥
गायत्री! त्वं विश्वामित्र शापाद् विभुक्ता भव।

इन मंत्रों को एक-एक बार पढ़ कर जल छोड़ दें। फिर इस मंत्र से गायत्री का आवाहन करें-

आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्म वादिनि।
गायत्रीच्छान्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तुते॥

फिर इस मंत्र का उच्चारण कर ध्यान करें और अर्घ्यदान करें। मंत्रः-

सोहम् अर्कोऽस्म्यहं ज्योतिरात्मा ज्योतिरहं शिवः।
आत्मा ज्योतिरहं शुक्लः सर्व ज्योति रसोऽस्म्यहम्॥
आगच्छ वरदे देवी गायत्री ब्रह्म रूपिणि।
जपानुष्ठान सिद्धयर्थं प्रविश्य हृदयं मम॥
उत्तिष्ठदेवि गन्तव्यं पुनरागमनाय च।
अर्घ्येषु देवि गन्तव्यं प्रविश्य हृदयं मम्॥

(देवी भागवत ११/१६/५८-६०)

इस मंत्र के उच्चारण से सांगोपांग संध्या का फल प्राप्त होता है।

वह सूर्य मैं ही हूँ। मैं ही आत्म ज्योति हूँ। मैं ही ज्योतिर्मय शिव हूँ। आत्म ज्योति मेरा ही रूप है। मैं ज्योतिर्मय पूर्णिमा हूँ। मैं रस स्वरूप हूँ। हे वर दायनी भगवती गायत्री! तुम ब्रह्म स्वरूपणी हो, मेरे इस जपमय अनुष्ठान को सिद्ध करने के लिए मेरे हृदय में प्रवेश करो। देवी! उठो आओ! इस अर्घ्य जल द्वारा मेरे हृदय में प्रवेश करो।

फिर अर्घ्य जल का आचमन करें और कवच का उच्चारण करें।

ॐॐॐ भूः ॐॐॐ भुवः ॐॐॐ स्वः
ॐॐॐ तत् ॐॐॐ सवितु ॐॐॐ वरेण्यम्
ॐॐॐ भर्गो ॐॐॐ देवस्य ॐॐॐ धीमहि
ॐॐॐ धियो ॐॐॐ यो ॐॐॐ नः
ॐॐॐ प्रचो ॐॐॐ दयात्।

फिर सात बार प्रणव का उच्चारण करके गोपनीय युक्ति द्वारा श्रुति ध्यान से जप द्वारा पुरश्चरण करें।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्॥

फिर सतत् अनन्य केवल एक प्रणव ॐ के सम्पुट योग से जप चलता रहे। आरम्भ के दिन से लेकर समाप्ति के समय तक समान रूप से प्रतिदिन जप

करे, न किसी दिन अधिक और न किसी दिन कम करें। जप सदा रुद्राक्ष की माला से ही करे। यों पुरश्चरण समाप्त हो जाने के पश्चात् आखरी दिन २४ लाख का यदि पुरश्चरण हो तो २४ लाख का दशांश २४ हजार और यदि ३२ लाख का हो तो ३२ लाख का दशांश ३२ हजार के जप द्वारा हवन यज्ञ करें और २४ ब्राह्मणों की अथवा ३२ ब्राह्मणों की शोडष पूजन कर उन्हें क्षीर मालपुआ का भोजन कराके अन्न वस्त्र, रुद्राक्ष की माला आसन पात्र व मुद्रा आदि १६ वस्तुओं का दान करें और उन्हें साष्टांग प्रणाम कर प्रसन्न कर विदा करे। विदा के समय गौ पूजन कर गौ दान दें।

इस प्रकार पुरश्चरण करने के पश्चात् अभिलषित काम्य कर्मों के लिए निमित्त जप करना चाहिये। जब तक कार्य में सफलता न प्राप्त हो तब तक जप का क्रम चालू रखें।

सामान्य काम्य कर्म में यथावत विधिः–प्रतिदिन सूर्योदय पूर्व स्नान करके सूर्य सम्मुख बैठकर व खड़े रह कर प्रतिदिन जप ध्यान करना चाहिये।

यह गायत्री धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदायनी है। मन की सारी वृत्तियों को रोक कर जल में प्रातः तीन लाख मंत्र जप करने से विद्वता प्राप्त होती है। प्रतिदिन

सूर्योदय काल में ही स्नान करके एक सहस्त्र जप करने से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और धन अवश्य प्राप्त होता है। प्रतिदिन एक सहस्त्र जप करने से एक वर्ष में सिद्धि प्राप्त हो जाती है। एक लाख जप घृताक्त कमल के पुष्प हवन साथ ही साथ करने से सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति होती है। तीन पुरश्चरण पूर्ण कर लेने पर साधक स्वयं सिद्ध हो जाता है। यति सन्यासी स्वयं हवन यज्ञ न करके पुरश्चरण के पश्चात् ब्राह्मणों से दशांश हवन करवावे तो मोक्ष ज्ञान की प्राप्ति होवे। इस गायत्री की २४ माला रोजाना फेरनी चाहिये।



॥ गायत्री की महिमा ॥

गायत्री सम्पूर्ण वेदों की जननी है, जो गायत्री का अभिप्राय है वही सम्पूर्ण वेदों का अर्थ है।

गायत्री मंत्र चारों वेदों में पाया जाता है:–ऋग्वेद के अ. ४ व. १०, मं. ३ सूक्त ६२ में गायत्री मंत्र है। यजुर्वेद संहिता के तीसरे अध्याय में पैंतीसवां मंत्र गायत्री मंत्र है। सामवेद का सावित्री उपनिषद् ही है। अथर्ववेद के सूर्योपनिषद् में भी यह गायत्री मंत्र है। छान्दोग्य में तथा वृहदारण्यक में भी गायत्री की प्रचुर महिमा वर्णित है।

इस प्रकार सर्ववेद व्यापकत्व से गायत्री की महिमा झलकती है।

"गायत्री छन्दसां मातेदंब्रह्म जुषस्वमे" (श्रुति)

"गायत्री छन्द सामहम्" –(गीता)

गायत्री जप कृद्भक्तया सर्वपापैः प्रमुच्यते

(पराशर)

सर्व पापानि नश्यन्ति गायत्री जपतो नृप।

(भविष्य पुराण)

ऐहिकामुष्मिकं सर्व ज्ञायत्री जपतो भवेत्।

(अग्नि पुराण)

ब्रह्महत्यादि पापनि गुरुणि च लघूनि च।
नाशयत्यचिरेणैव गायत्री जापको द्विजः॥

(पद्म पुराण)

वेद अपौरुषेय और अनादि है और गायत्री वेदमाता है इसलिए गायत्री भी अज, अनादि और निर्लेप ब्रह्म का स्वरूप है। ब्रह्म का ही दूसरा नाम गायत्री है, गायत्री ब्रह्म की शक्ति है, ब्रह्म और शक्ति अभेद्य है।

गायत्र्याख्यं ब्रह्म गायत्र्यनुगतं गायत्री मुखेनोक्तम।
गायत्री वा इदं सर्वम् (नरसिं. पू. ता. उ, ४/२)
गायत्री व इदं सर्व भूतं यदिदं किंच...

(छा. उ ३/१२/१)

गायत्री नामक ब्रह्म गायत्री के अनुगत गायत्री नाम से वर्णित है। यह सारी सृष्टि गायत्री है, यह दृश्यमान जगत चर-अचर सब कुछ गायत्री है।

यह गायत्री सर्व विद्याओं का सार तत्व है। अठारह विद्याओं में मीमांसा सब से श्रेष्ट है और मीमांसा से तर्क शास्त्र, तर्क शास्त्र से पुराण, पुराणों से धर्म-शास्त्र, धर्म शास्त्रों से वेद और वेदों से उपनिषद् ये एक से एक श्रेष्ट हैं परन्तु इन सबसे श्रेष्ट गायत्री है-

अष्टदशसु विद्यासु मीमांसाऽतिगरीयसी।
ततोऽपि तर्क शास्त्राणी पुराणं तेभ्य एवं च॥
ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्णी श्रुतिर्द्विज।
ततोऽप्युपनिषच्छेष्ट गायत्री च ततोऽधिका॥

(वृहत् संध्या भाष्य)

उपनिषद वेदों से श्रेष्ट हैं और प्रत्येक उपनिषद् में गायत्री विषयक तत्व अनुवाक एक-दो मिल ही जाती हैं। परन्तु सावित्र्युपनिषद् में सविता और सावित्री को पूर्ण व्यापक रूप से स्वरूपादित किया है और देवी भागवत में तो इस वेदमाता गायत्री सावित्री के सहस्त्रों श्लोक स्वरूप विद हैं।

यह गायत्री तत्व में ब्रह्म के सब गुण वर्तमान हैं। इसमें पृथ्वी के सर्वगुण, स्वर्ग के सर्वगुण, और अन्तरिक्ष के सर्वगुण वर्तमान हैं। परन्तु इस गायत्री तत्व का पूर्ण बोध इस पृथ्वी पर ही होता है इसलिए सर्वलोकों में यह भूलोक ही सबसे सर्वश्रेष्ट है, इस गायत्री के तत्व की महिमा से।

य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्व गुणान्विताम।
तत्वेन भरत श्रेष्ट स लोक न् प्रणश्यति॥

(महाभारत भीष्म पर्व १४-१६)

इसी गायत्री के महत्व को अपने हृदय में रखते हुए महर्षि बाल्मीकि ने "तत्पद" से रामायण को प्रारम्भ किया, यही गायत्री का प्रथम पद है और चौबीस सहस्त्र श्लोक से समाप्त किया है। इसका प्रतिपाद्य तत्व श्री राम को ठहराया अर्थात् एक-एक अक्षर का एक एक सहस्त्र श्लोक से रामायण का पूर्ण व्याख्यान किया। इस प्रकार यह पूर्ण रामायण गायत्री-बद्ध है।

भगवान वेद व्यास जी ने भी गायत्री प्रतिपाद्य सत्य परम तत्व से ही भागवत आरम्भ किया। इन्होंने भी भागवत का प्रतिपाद्य तत्व श्री प्रेम मूर्ति चिन्मय वपु श्री कृष्ण को ठहराते हुए द्वादश-स्कन्धात्मक भागवत को गायत्री-तत्व प्रतिपादन में ही समाप्त किया अर्थात् गायत्री के दो-दो अक्षरों का व्याख्यान एक-एक स्कन्ध में किया है।

"सत्यं परं धीमहि" तं धीमहि इति गायत्र्या प्रारम्भेण गायत्र्याख्य ब्रह्मविद्यारूपमेतत्पुराणम्।

(इति श्रीधर)

ब्रह्म सूत्र में-**"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"**-**"जन्माद्यस्य यतः"** इत्यादि गायत्री-तत्व (**सविता जगत्प्रसविता पर ब्रह्म**) के प्रतिपादन में ही चरितार्थ हुआ है-वहाँ **"शास्त्रयोनित्वात" "तत्तुसमन्वयात्"** इत्यादि प्रथम अध्याय में सविता के स्वरूप प्रतिपादन में ही सम्पूर्ण वेदों का तात्पर्य बतलाया। दूसरे अध्याय में विरोधी शंकाओं का परिहार किया है। तीसरे अध्याय में तत्व ज्ञानोपयोगी साधनों का वर्णन किया है और चौथे अध्याय में तत्वज्ञान के फल कैवल्य का वर्णन किया है।

एकाक्षरं पर ब्रह्म प्राणायामः परं तपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यंविशिष्यते॥

(मनु. २/८३)

गायत्री के जप से ही प्रथम प्राणायाम रूपा तप की विधि होने से भी गायत्री की महिमा झलकती है। स्वयं गायत्री के जप की महिमा भी अगाध है।

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपाशुं स्याच्छतगुणः सहस्त्रो मानस स्मृतः॥

दर्श-पौर्णमासादि यज्ञ से प्रकृत प्रणवादि सहित गायत्री-मंत्र का जप दश गुणा अधिक है। यह जप भी यदि उपांशु (जिसमें होठ न हिले, केवल जिह्वा साध्य) हो तो शतगुणादिक फलदायी होता है। और केवल मानस हो तो सहस्त्र गुना अधिक फल देने वाला होता है। प्रयत्न के बिना स्वतः यदि मन जप करे तो वह अनन्त फल वाला होता है।

गौतम ऋषि ने न्याय दर्शन में प्रकृति धातु मात्र को लेकर अन्त से आरम्भ करके संसार-क्रम का वर्णन भी सूचित करता है "**प्रचोदयात**"-प्रथम सृष्टि काल में प्रचोदना, अदृष्टवशात् प्रमाणु में आद्य क्रिया होती है, तदनंतर "**यो नः**" (यू मिश्रणे) अर्थात् प्रमाणु द्वय आदि का मिश्रण (संयोग) होता है एवं आरम्भवाद

की रीति से संयोग पूर्वक सृष्टि होती है, तदनन्तर "**धियः**" आत्म मनः संयोग पूर्वक सांसारिक बुद्धि होती है, सांसारिक भोगादि होता है, तदनन्तर "**धीमहि**" अर्थात् ईश्वर ध्यानादि से तत्व विषयक "**धी**" ज्ञान की प्राप्ति होती है, तदनन्तर "**अदेवस्य भर्ग**" अर्थात् अज्ञान का भर्जन होता है (नाश होता है) और मिथ्या ज्ञान के नाश के अनन्तर "**वरेण्यम**" वरणीय अपवर्ग की प्राप्ति होती है। यह अपवर्ग क्या है? "**सवितु**" कर्ता स्वरूप आत्मा की "**तत्**" एक विंशति दुःख का अत्यन्त ध्वंश रूप अकर्तृत्व अवस्था है।

महऋषि पतंजलि के योग शास्त्र की प्रक्रिया में भी गायत्री मंत्र "**प्रचोदयात**" कुण्डलिनी समुत्थान क्रिया से लेकर षट चक्र भेदन पूर्वक सहस्त्र सार कमल विकास पर्यन्त जो जो क्रियाएँ होती हैं वह सम्पूर्ण क्रियाएँ "**प्र**" पूर्वक चुद धातु का अर्थ है–लिंगर्थ प्रार्थना है अर्थात् सविता–क्लेशादि से अपरामृष्ट परमेश्वर हमारी बुद्धि को शुभ योग क्रिया की ओर प्रवृत्त करे, अन्य संसार विषयक प्रवृति हमारी न हो। इसी प्रकार अन्य पदों का व्याख्यान भी यथायोग्य समझना चाहिये और अन्य दर्शनों की भित्ति भी इस महामंत्र गायत्री के आधार व लक्ष पर आधारित है। तांत्रिक मत में भी शक्ति प्रतिपादक बीज "**ह्रीं**" और

"**क्लीं**" को भी गायत्री स्वरूप ही माना है और कई ब्राह्मण गायत्री के तत् सवितु के पूर्व "ह्रीं" बीज को लगाकर जप किया करते हैं। और भी कई मतों में ब्रह्म गायत्री, शिव गायत्री, विष्णु गायत्री आदि विनियोग से गायत्री ही की महिमा व कारण-कार्य अभेद व भेद परक सिद्धान्त लेकर आर्श व सिद्ध मत मतान्तर हैं। इन सब मतों के वैदिकत्व की शंका भी नहीं हो सकती क्योंकि अधिकारी भेद के अभिप्राय से भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं का वर्णन भिन्न-भिन्न शास्त्रों में किया गया है। लेकिन वेदान्त के– "**अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंच प्रपंचयते**"। यहाँ अन्य शास्त्र अध्यारोप है, वेदान्त शास्त्र अपवाद है। सर्व शास्त्रों का ध्येय लक्ष्य एक ही तत्व है, यही सब का आत्मा, गायत्री-मंत्र का भी लक्ष्य है।

जो लोग ब्राह्मणत्व का अभिमान रखते हुए भी वेदोपास्य ब्रह्म चित्कला ॐकार स्वरूपा प्रत्यक्ष ब्रह्म रूपा गायत्री को नहीं जानते, उनको क्या कहूँ? दया आती है, इसलिए प्रार्थी हूँ और आत्म स्वरूप होने से गुरुत्वाकर्षण द्वारा संदेश वाहन हूँ और गुरु गरिमा से आत्म स्वरूपा गायत्री का प्रेरक हूँ।

हे द्विजों! देवी भागवत में तो भगवती गायत्री का पूर्ण अधिकारी होने से द्विज मात्र को शाक्त कहा है,

भले ही वे शिव मंत्र या विष्णु मंत्र में दीक्षित हों। वास्तव में शाक्त होते हैं। क्योंकि द्विज मात्र उपनयन संस्कार के समय इस वेदमाता गायत्री से दीक्षित हो जाता है। गायत्री ब्राह्मण का स्वरूप है और यह ब्राह्मणत्व ईश्वर प्रदत्त धर्म है, वैष्णव-शिवत्व आदि तो जीव प्रदत्त सम्प्रदाय हैं। यह ब्राह्मणत्व ब्राह्मण का निज स्वरूप धर्म है और यह गायत्री ब्राह्मण की आत्मा है इसलिए द्विज मात्र की उपासनीया गायत्री है, अन्य देवता तो गायत्री के बाद में हैं-

सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णव।
आदि शक्ति मुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्॥

(देवी भागवत)

बड़ी लज्जा की बात है कि जो महर्षि गायत्री को अपना जीवन धन और अपना स्वरूप मानते थे उन्हीं की सन्तति आज गायत्री को जानती भी नहीं। जो जानते हैं वे भी कोरा वाचक जप ही करके अपने को ब्राह्मण मान लेते हैं। लेकिन उनमें से कुछ ही पुरश्चरण व काम्य लाभार्भ अनुष्ठान भी कर लेते हैं। परन्तु नहीं के बराबर इस ब्रह्म चित् कला गायत्री के वेदान्तपरक अभेद बोध व अभेद उपासना की गरिमा में गरक हैं। समस्त ज्ञान और शक्ति को एकत्र कर

समाहित चित्त से एक बार विचार कर देखिये कि "**ब्राह्मण**" ओर "**गायत्री**" में कितनी अभेदता है तथा ब्राह्मण के गायत्री-तत्व में कितना महान् भाव और व्यापक सत्य निहित है, ब्राह्मण और गायत्री अभेद है।

इसलिए जो ब्राह्मण अपने घर की खबर न रख कर अनात्म तत्व देवादि भेद उपासना में आसक्त है तथा स्वदेश आत्म गायत्री का त्याग कर परदेश में विचरण करता है उन्हें भाग्यहीन के सिवा क्या कहूँ।

ब्राह्मण ब्रह्म स्वरूप गायत्री की ओर ध्यान दें और जो ब्राह्मण त्रिसन्ध्या करते हैं वे भी तीनों रूपों की साधना करते करते धीरे-धीरे उच्चत्तर सोपान में अग्रसर होने के प्रयत्न करें, केवल व्यवहारिक वित्तेंशणा, पुत्रेशणा और लोकेशणा से ही परमपद की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए त्रिसन्ध्य से अग्रसर होकर परमार्थ सत्ता की प्राप्ति के लिए चतुर्थ वा निशासंध्या का अधिकार प्राप्त करें। यही निवृत्ति मार्ग का परम सन्यास धर्म है। इस निशा सन्ध्या की बात आज ब्राह्मण समाज में एक दम ही लोप सी हो गई है। साधन-मार्ग का गुप्त रहस्य सम्पूर्ण रूप से ब्राह्मण-धर्म शिक्षा के और ब्राह्मण ब्रह्मनिष्ठ सतगुरु के अभाव से एकदम लुप्त सा हो गया। कर्म मार्ग में पृथक

पृथक आराधना करने से ब्राह्मण का चित्त परिछिन्न हो गया इसलिए अब ब्राह्मण को भेद उपासना त्याग, सुसंयत हो एकनिष्ठा से आत्म स्वरूप गायत्री की अभेद उपासना तुरीया वा निशा संध्या में अनुरक्त होना होगा। वेदान्त शास्त्र में उसी तुरीया संध्या की विधि का वर्णन है। अत: वेद में कर्मकाण्ड एवं वेदान्त में ज्ञानकाण्ड प्रकाशित किया गया है।

हे ब्राह्मण! तू कब तक कर्म मार्ग में रहकर भिन्न भिन्न भाव से भिन्न भिन्न उपासना करता, क्रिया-कर्म में रत रहता क्रिया रूप काया को ग्रहण करता रहेगा? त्याग! अब इस क्रिया कर्म के फलरूप काया के लक्ष को गुणों का क्षय कर और गुणातीत वा निस्त्रैगुण्य पथ (सन्यासाश्रम) में निशा-संध्या के समय उस त्रिशक्ति का समन्वय-एकता करके एकाधार में आत्म स्वरूप गायत्री पूर्ण ब्रह्म की आराधना कर।

अकारः सात्विको ज्ञेय उकारो राजसः स्मृतः।
मकारस्तामसः प्रोक्तस्त्रिभिः प्रकृतिरुच्यते॥

(ज्ञान संकलिनी-तंत्र)

अकार को सत्व गुणात्मिका वैष्णवी, उकार को रजो गुणात्मिका ब्राह्मी, **म**-कार को तमोगुणीत्मिका रुद्राणी और इन तीनों की समष्टि को ओंकार "**ॐ**"

वा त्रिपुर सुन्दरी प्रणव-रुपिणी परमा-प्रकृति कहते हैं। यही महाप्रलय की प्रतिकृति-शिवा तुरीया तूर अवस्था आत्मा ब्रह्म है। सर्व साधारण के क्षुद्र हृदयाधार में अनन्त-ब्रह्म-महासमुद्र की धारण करने का स्थान बिल्कुल ही नहीं हो सकता। वह तो केवल ब्राह्मण हृदय ही है जो गुणातीत तुरीया शक्ति वृत्ति की धारणा अभेद आत्म रूपा कर सकता है।

इसलिए हे ब्राह्मण! तू इस प्रणव रूपा गायत्री "ॐ" गुणातीता तुरीया वृत्ति की अभेद धारणा कर, चिन्तन कर और एकाधार धारणा से ध्यानस्थ हो जा। यह प्रणव स्वरूपा गायत्री तेरी आत्मा है। इस अभेद सोऽहम् वृत्ति से जब तू उच्च समाधि अवस्था में तोय तरंग रूप से विलीन होगा तभी तुझे अचिन्त्य तथा अनिर्वचनीय तुरिया भाव से तुरियावस्था प्राप्त होगी और परमानन्द से सच्चिदानन्द लाभ होगा। यही जीवन मुक्ति है।

इस निशा-सन्ध्या के समय उस त्रिशक्ति का समन्वय एक ही आधार में अभेद पूर्ण कर गायत्री की उपासना करना ब्राह्मण के लिए एक मात्र ब्राह्मणत्व है। काम्य विषय लक्ष व उद्देश्य है लेकिन यह गायत्री की अभेद उद्‌गीथ उपासना पूर्णतः गुप्त और सरंक्षित है। यह ब्रह्म विद्या का गुप्त रहस्य किसी किसी वंश

परंपरागत उत्तम ब्रह्म कुल के ब्राह्मण अथवा दण्डी सन्यासी व परमहंस के हृदय में हृदयस्त है। आसक्ति-विरक्ति रहित निष्काम सन्यासी गायत्री की तुरियावस्था की साधना करते हैं। अतः ब्राह्मण का श्रेष्ट धर्म ही सन्यास है और ब्राह्मण व सन्यास का एक ही सत्य अर्थ है। विशुद्ध ब्राह्मण और ब्रह्मज्ञ व्यक्ति के लिए कर्म का अनुष्ठान तथा विसर्जन दोनों एक ही समान है।

इस गायत्री की अभेद उपासना करके पुराकाल में ब्राह्मणों ने-"**एकमेवा द्वितीयम्**", "**अयंमात्मा ब्रह्म**" "**सर्वं खल्विदम् ब्रह्म**" "**सोऽहम्**" "**तत्वमसि**" "**प्रज्ञानं ब्रह्म**" "**अहं ब्रह्मास्मि**" आदि महावाक्यों की सृष्टि की, जिनकी अमृतधारा पानकर आज भी शाश्वत सुख की तृप्ति से कृतार्थ हो रहे हैं।

गुरु आज्ञा से ब्राह्मण को सजग और जाग्रत करने के लिए इस निबन्ध में संरक्षित गुप्त रहस्य के सप्त सूत्रों में से एक सूत्र पर प्रकाश डाला है। उस आत्म स्वरूप प्रकाश की किरण को ग्रहण कर, उसकी ओर उन्मुखी हो कर एक बार प्रणव गायत्री द्वारा आत्मा की ओर झांक लेने मात्र से गुरुत्वाकर्षण द्वारा साधक ओलोक के सप्तसूत्रों को पार कर पूर्णत्व तुरिया-भूमा

अपरोक्षानुभूति को अवश्य ही प्राप्त करेगा। यह ऋषियों की अनुकम्पा और कृपा मात्र का फल है जिसकी ओर आत्मज्ञ एक बार झांक लेता है वह साधक भी आत्मज्ञ हो जाता है।

इस महाशक्ति सावित्री की महिमा अकथनीय है। इसीकी शक्ति-प्रताप से ब्रह्म सृष्टि की उत्पत्ति करता, विष्णु पालन करता है और रुद्र संहार करता है। यही गायत्री देवी हंसस्था ब्रह्म रूपा, गरुड़ारुढ़ा विष्णु रूपा और वृषभ वाहिनी शिव रूपा है। यही त्रिपुर सुन्दरी ब्राह्मी-वैष्णवी-रौद्री है और यही संध्या गायत्री-सावित्री-सरस्वती है। इसीकी कृपा से याज्ञवल्क ऋषि ब्रह्मज्ञ बने, विश्वामित्र ने नवीन सृष्टि की रचना की और ब्रह्म ऋषि बना। इसी की कृपा से वेद व्यास जी ने वेदों का भाष्य किया, महाभारत लिखा, गीता लिखी, भागवत लिखी और ब्रह्मसूत्र आदि सद्ग्रंथों की रचना की। इसी की कृपा से विष्णु ने समुंद्र मंथन किया और शिव ने हलाहल विषपान किया। इसीकी कृपा से धनवंत्री ने आयुर्वेद का भाष्य किया और अब भी कई औषधियाँ बिना गायत्री के सम्पुट के सिद्धहस्त कार्य नहीं करतीं। गायत्री के ही सम्पुट से औषधि सिद्ध रूप कार्य करती हैं। धनुर्वेद में गायत्री का बल पूर्ण रूप से प्रगट है। सवित्री धनुर्वेद का

महान अंग है, बहुतेरे धनुर्धरों ने सावित्री की उपासना कर विजय और कीर्ति प्राप्त की है। किसी ने ब्रह्मास्त्र सिद्ध किया तो किसी ने पाशुपतास्त्र प्राप्त किया। ब्रह्म दण्ड और ब्रह्म शिरस जैसे अमोघ अस्त्रों के लिए बहुतेरे ब्राह्मणों ने तपश्चर्या की है और उन्हें सिद्ध किया है। स्वयं विष्णु ने इसी मंत्र द्वारा भगवान आशुतोष को प्रसन्न कर "सुदर्शन" प्राप्त किया था। पूर्वा गायत्री फल धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है तथा पश्चिमा सावित्री अर्थात् सावित्री विलोम रूपा प्रलय रूपा अस्त्र द्वारा संहार रूपा तथा मारण रूपा भी है। ब्रह्मास्त्र के लिए उल्टा तस्य स्वरूपम्-

ॐ दयादचोप्र नो यो योधि हिमधी स्यवदेर्गोभण्यरेर्वतुविस तद स्वोवर्भुभूरोम्॥

ब्रह्मास्त्र के लिए सावित्री का उल्टा क्रम-एक निखर्व (दश सहस्र कोटि) संख्यक मंत्र-जप करके अस्त्र में मंत्राधान करने से प्रचण्ड ब्रह्मास्त्र बनता है। शस्त्र को वापिस खींच लेने के लिए सावित्री का सीधे क्रम का एक निखर्व जप किया पुरुष ही पात्र चाहिये। वेद माता सावित्री की पश्चिमा-शक्ति का अविर्भाव सब शस्त्रों में किया जा सकता है और संहार पूर्वा शक्ति से। पाशुपतास्त्र के लिए-

ॐ दयादचोप्र नो यो योधि हिमधी स्यवदेर्गोभण्यरेर्वतुविस तद् स्वोवर्भुभूरोम। श्लीं पशु हुं फट् (अमुक शत्रून्) हन हन हुं फट्।

इस मंत्र का दो लाख का पुरश्चरण होता है। मंत्र सिद्ध होने पर सब शत्रुओं का नाश हो जाता है। और शक्ति को वापिस खींचने के लिए पूर्वा-शक्ति का दो लाख के पुरश्चरण किये हुए पात्र की आवश्यकता है।

ब्रह्म दण्ड के लिए मंत्र इस प्रकार है-

ॐ प्रचोदयान्नो यो धियो धीमहि देवस्य भर्गो वरेण्य सवितुस्तत् (अमुक शत्रु) हन हन हुं फट्॥

इस मंत्र का दो लाख का जप करके उसका आवाहन शर में करे तथा ब्रह्मास्त्र के समान उसकी योजना करे। इस मंत्र से यम जैसा भयानक शत्रु भी विनाश को प्राप्त होता है और पूर्वा गायत्री शक्ति के दो लाख जप किया हुआ ही इस को विराम दे सकता है।

ब्रह्म शिरस् प्रयोग मंत्र-

ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् भर्गो देवस्य धीमहि तत्सवितुर्वरेण्यं (शत्रून्मे) हन हन हुं फट्॥

इस मंत्र का तीन लक्ष जप करने से सिद्ध होता है। प्रयोग करने के लिए शक्ति को शस्त्र में लगावे अथवा कुश पर या उड़दों पर आवाहन करे। शस्त्र, कुश, उड़द आदि अमोघ शक्ति बन जाते हैं।

यह वेद माता गायत्री ब्राह्मणों के पास प्रत्यक्ष कामधेनु है। इस का एक निखर्व जप का पुरश्चरण कर अमोघ शक्ति द्वारा गंगा जल को मंत्रित कर शुद्ध अक्षित योनि कपिला को और अक्षित रिषभ को पिला कर उनसे "गऊ" उत्पन्न की जाय तो "कामधेनु" प्रगट होती है।

इस प्रकार प्रत्यक्ष चेतना-शक्ति वेद माता गायत्री चिद् आत्म रूपा कामधेनु को प्राप्त कर ब्राह्मण दीन-दरिद्र ब्रह्मज्ञानहीन और तप-तेजहीन क्यों? क्या ब्राह्मण कभी ब्रह्मज्ञान हीन दरिद्र हो सकता है? कदापि नहीं। इस ब्राह्मण शब्द ही का अर्थ ब्रह्म में रमण करने हारा है, प्रत्यक्ष ब्रह्म है। प्रणव में रमण करने हारा, प्रत्यक्ष प्रणव रूपा ॐकार स्वरूप है। ब्राह्मण गायत्री रूपा आत्मा है।

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामाऽसि प्रियं देवानामनाधृष्टंदेवयजनमसि।

हे ब्राह्मण! तुम ॐकार स्वरूप हो। शुद्ध अविनाशी

तेज-स्वयं ज्योति स्वरूप हो। तुम धामों के भी धाम हो। देवों के भी प्रिय आनन्द स्वरूप हो। अघर्षणीय-स्वतन्त्र हो और पूज्यों के भी पुज्य हो। तत्वमसि!

यह त्रिपुर सुन्दरी गायत्री आत्मा तुम्हारे हृदय में बैठी अखण्ड रूप से तुम्हारा आवाहन कर रही है। और अपने स्वरूप का सोऽहम्! सोऽहम्!! अखण्ड गान कर रही है। इस विशुद्ध अजप्पा आनाहत गायत्री के माध्यम से श्रुति ज्ञान-ध्यान द्वारा अपने शुद्ध स्वरूप आत्मा में स्थित हो जाओ, यही तुम्हारा ब्रह्मस्वरूप है। भूमा, अजात अपरोक्ष है। तुम आत्मा हो! ब्रह्म हो! तत्वमसि। तत् पद, त्वं पद और असि पद ही सावित्री है। सत्-चित्-आनन्द स्वरूपा अहं + ब्रह्म + असि, सोऽहम् गायत्री है।



ॐॐॐ. भूः ॐॐॐ भुवः ॐॐॐ स्वः
ॐॐॐ तत् ॐॐॐ सवितु ॐॐॐ वरेण्यम्
ॐॐॐ भर्गो ॐॐॐ देवस्य ॐॐॐ धीमहि
ॐॐॐ धियो ॐॐॐ यो ॐॐॐ नः
ॐॐॐ प्रचो ॐॐॐ दयात्।

रणधीर प्रकाशन
182 श्रवणनाथ नगर, समीप हैप्पी स्कूल,
आरती होटल के पीछे, हरिद्वार (उ.प्र.) पिन-249401

॥ ब्राह्मण ॥

(कुण्डलिया)

सबय मुक्त जा में रमै, वो ब्राह्मण परमाण ॥
वो ब्राह्मण परमाण, ब्रह्म विद् सदा उदासी।
शान्त बुद्धि थिर आत्म भाव विद्या परकाशी ॥
शम दम तप अरु शौच में निर्मल रहवे आप।
क्षमा दया अरु ज्ञान से मेटे जग त्रय ताप ॥
विज्ञानी योगी महा जीवन शास्त्र प्रमाण।
सुख दुःख समता में सदा राजा रंक समान ॥
सिद्धनाथ गम आपकी, गायत्री गलताण।
सबय मुक्त जा में रमै, वो ब्राह्मण परमाण।

गायत्री मन्त्र साधना

लेखक – तांत्रिक बहल

गायत्री मन्त्र जो राजर्षि विश्वामित्र की अन्तश्चेतना और त्रिगुणातीत शक्ति से निर्मित है जिसका वेदों से लेकर पुराणों तक सभी धार्मिक ग्रन्थ उद्घोष करते हैं। गायत्री मन्त्र की साधना–एक मार्ग है आत्मबोध का, यह एक सोपान है चेतना के ऊर्ध्वारोहण का। गायत्री कुंडलिनी जागृति एवं समाधि हेतु एक साधना मन्त्र है।

धर्म ग्रन्थों में गायत्री की त्रिगुणातीत उपासना अनिवार्य रूप से समाज को दी गई है। सन्ध्या का विधान आवश्यकरूप से विषद किया गया है। भौतिकता की चकाचौंध और यांत्रिक जीवन प्रणाली में यह आध्यात्मिक आत्मचेतना की ओर ले जाने में सहायक है।

इस पुस्तक में गायत्री उत्पत्ति, गायत्री विज्ञान, गायत्री महत्व, प्रमुख गायत्रियां, पूजन सामग्री, हवन के लिए औषधियाँ, मानस पूजा, आवरण पूजा, नैमित्तिक पूजन, काम्व पूजन, गायत्री के चौबीस रूप, गायत्री स्वरूप गायत्री विधान, पूर्णाहुति, गायत्री सिद्धियां, गायत्री विसर्जन, गायत्री चालीसा व आरतियां भी सम्मिलित की गई हैं। पुस्तक निम्न पते से मंगायें–

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

गायत्री अर्थ संग्रह
(गायत्री चंद्रिका सहित)
स्वामी सुरेश्वरा नन्द जी द्वारा संग्रहीत

इस पुस्तक में गायत्री वेदसार निरुपण, गायत्री शब्द निरुक्ति, प्रणव विचार, भारद्वाज मुनि, माधवाचार्य तथा विधारण्य मुनि कृत व्याख्या, गायत्री जप प्रकार निरुपण, जप माला, पाणिमाला, कूर्मचक्र प्रकार, होम विधि, मुद्राविधि, विनियोग मन्त्र, गायत्री पूजन, गायत्री -पुरश्चरण व सन्ध्याओं के प्रकार इत्यादि सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही साथ गायत्री पाठ में दिखाई जाने वाली 24 मुद्राओं के चित्र, विसर्जन मुद्राओं के आठ चित्र भी हैं। गायत्री मंत्र पर अति प्राचीन व खोज पूर्ण सामग्री से युक्त यह पुस्तक मंगाने का पता–

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

चारों वेदों का सार

संपादित : उमेश पुरी 'ज्ञानेश्वर'

ऋग्वेद-सार

इस पुस्तक में 'ऋग्वेद' का ज्ञानामृत १०८ सूक्तियों में संकलित है। ऋग्वेदामृत से परिपूर्ण सूक्तियों की इस सूक्ति-माला को जीवन में व्यवहारिक रूप से जपेंगे तो कर्म के लिए तत्पर होंगे। एक बार पढ़कर तो देखें, आपको लगेगा—जीवन में आत्म-ज्ञान का अनुपम मार्ग मिल गया।

यजुर्वेद-सार

इस पुस्तक में 'यजुर्वेद' का ज्ञानामृत १०८ सूक्तियों में संकलित हैं। यजुर्वेदामृत से परिपूर्ण सूक्तियों की इस सूक्ति-माला को जीवन में व्यवहारिक रूप से जपेंगे तो कर्म के लिए तत्पर होंगे। एक बार पढ़कर तो देखें, आपको लगेगा—उन्नत पथ पर बढ़ने का उत्कृष्ट कर्म-ज्ञान मिल गया।

सामवेद-सार

इस पुस्तक में 'सामवेद' का ज्ञानामृत १०८ सूक्तियों में संकलित है जिसे पढ़ व समझकर व्यवहार में लायेंगे तो ज्ञान का संवर्धन होगा। सामवेदामृत से परिपूर्ण सूक्तियों की इस सूक्ति-माला को जीवन में व्यवहारिक रूप से जपेंगे तो उन्नति पथ अवश्य प्रशस्त होगा। एक बार पढ़कर तो देखें, आपको लगेगा—अशान्त जीवन में शान्ति पाने का अनुपम मार्ग मिल गया।

अथर्ववेद-सार

इस पुस्तक में 'अथर्ववेद' का ज्ञानामृत १०८ सूक्तियों में संकलित है। अथर्ववेदामृत से परिपूर्ण सूक्तियों की इस सूक्ति-माला को जीवन में व्यवहारिक रूप से जपेंगे तो ज्ञान से कर्म के लिए तत्पर होंगे। एक बार पढ़कर तो देखें, आपको लगेगा—ज्ञान, कर्म और भक्तियोग का अनुपम मार्ग पा लिया।

रणधीर प्रकाशन
रेलवे रोड (आरती होटल के पीछे) हरिद्वार उ.प्र:
दूरभाष (0133) 426297-426195